
कुशवाहा कान्त



उड़ते उड़ते

कुशवाहा कान्त

प्रकाशक :–
भारत पॉकेट बुक्स
हीरापुरा, वाराणसी-२२१००१
*
मुद्रक :–
चिनगारी प्रेस
जालपादेवी रोड, हीरापुरा
वाराणसी–२२१००१

अधिकृत-विक्रेता :–
चिनगारी प्रकाशन
सीके० ६४/५ जालपादेवी रोड,
हीरापुरा, वाराणसी-२२१००१
*
पो० बा० १०७८
*
फोन—६६१५८

उड़ते उड़ते * उपन्यास * कुशवाहा कान्त

भारत पॉकेट बुक्स

जनाना-शासन !

अभी उस दिन अपने राम ने अपनी 'मेहरारू' को कोठे पर से ही पुकारा—"हरे ! जरी एक गिलास पानी दे जा तो...."

तो हाथ में गिलास बन्दूक की तरह पकड़े 'बुलेट' की तरह दनदनाती हुई अपनी 'वह' आ पहुँचीं और बम की तरह गिलास मेरे आगे पटक कर, तोप की तरह छूटते हुए बोलीं—ऐ जी ! हमरा के तोहरी रेरी नइखैं नीक लागत ।'

समझा आपने 'रेरी नइखैं नीक लागत ।"

यानी अब से अपनी 'मेहरारू' जी को श्रीमती एक लाख आठ (पौने आठ कह देने से उनके बिगड़ जाने का अन्देशा है और अपनी खद्दर की धोती के ढीली हो जाने का भी) 'फलानी देवी' कहना पड़ेगा ।

अर्थात् यदि 'मेहरारू' जी जरा 'फारवर्ड' हैं और 'अप-टू-डेट माइण्डेट' हैं, तब तो श्रीमती एक लाख आठ के बाद उनका नाम लिया जा सकता है और यदि 'वह' कोई देहाती भैंस हुईं तो अपने मुख से नाम सुनकर तुरन्त 'खड़ी' हो जायँगी ।

भैंस के 'खड़ी' होने की बात शायद आप शहराती 'मनई' न समझ सकें तो किसी देहाती 'मन्सेधु' से पूछ लें ।

मैंने भी देहाती बोली में, तनकर 'खड़ी' हुई अपनी 'भैंस' जी से कहा—'तोहरा के मेहरारू और मन्सेधु के प्रेमभरी बानी नइखै नीक लागत, तब हम का करीं ?....अब से तोहरा के इज्जत के साथ पुकारा करिब....'

"तब्बे ठीक होई....समुझि रक्खा !" कहकर वे चली गईं ।

अपने राम पुकारते ही रह गये—"अरे सुनो तो एक लाख प....प...पौने नहीं पूरे आठ श्रीमती मेहरारू महोदया !....सुनो तो...."

मगर कौन सुनता है ? आपने देखा न आजकल की 'मेहरारुओं' का पग-पग पर विद्रोह की झण्डी दिखाना, अपनेराम सरीखे पुंसक 'मन्सेधुओं' का १०८ डिग्री अपमान है ।

भला पति और पत्नी के दूध-पानी जैसे अंग-अंग सटे-मिले प्रेम के बीच, इस नाली में कीचड़ जैसे प्रतिष्ठापूर्ण व्यवहार का क्या तात्पर्य ? बीसवीं सदी की नारी चाहे चालीसवीं सदी की 'अप-टू-डेटा' बन जाय, परन्तु तब भी उसे पुरुष की बाँह पकड़ने की आवश्यकता पड़ेगी ही, तब भी अंग-अंग को सँवारने के लिए पुरुष का शरीर ही प्रधान रहेगा ।

यही, पहली सदी यानी सतयुग से होता आ रहा है और यही निन्यानबेवीं सदी यानी घोर कलिकाल तक होता रहेगा ।

नारी की प्रगति के अपनेराम विरोधी नहीं, परन्तु उसकी उत्तेजना देखकर सभी को 'ताव' चढ़ सकता है । पढो, लिखो, घुमो-फिरो, सैर सपाटे करो—परन्तु 'मन्सेधू' का हाथ पकड़े हुए । उसे बाल का 'जूँआँ' मत समझो—उसे नाखून पर रखकर 'चिट्ट' से मारो नहीं ।

अपनेराम 'मेहरारूओं' में 'रङ्गरेजी' यानी इंगलिश सभ्यता के कट्टर 'हिटलर' हैं—उनके गले में 'पगहा' डालकर खूँटे का कैदी तो नहीं बनाना चाहते—मगर यह भी नहीं देख सकते कि बाल-बच्चे और चूल्हा-चक्की अपनेराम के सिर पर पटक कर क्लब की सैर करें । दूसरे 'मन्सेधू' के हाथ को 'बाल-डान्स' में कमर की करधनी बनायें । मुँह में 'हवाना' डालकर तूफान मेल की तरह धुआँ छोड़ें । कलाई पर खटमल जैसी घड़ी बाँधकर दूसरों को दिखलायें कि—ऐ है ! मेरे पास तो सुनहली 'सेकेण्डस' हैं । सर से

धोती हटाकर नागिन का प्रदर्शन करें, ब्लाउज पर से आँचल खिसकाकर विन्ध्याचल की चोटी देखने का मौका दें, कमर में लहर भरकर गण्डक की धारा को मात करें, जरा-सी कलाई पकड़ते ही हाय-हाय, सी-सी करने लगें—आदि-आदि। भला यह भी कोई प्रगति है ?

मगर अपनेराम का ताव रह-रहकर ठण्डा हो जाता है, यह सोचकर कि प्रान्त में इस समय 'जनाना शासन' है यानी 'भारत-कोकिला' का राज्य है—(जिस वक्त यह लिखा गया था उस समय सुश्री सरोजनी नायडू उत्तरप्रदेश की गवर्नर थीं।) फिर अपना सर खामखाह 'मूसल' के आगे कर देने से क्या फायदा ?

बोलो, चालीसवीं सदी के 'मेहरारुओं' की जै !

बोलो, ग्यारहवीं सदी के 'मन्सेधुओं' की—जाने दीजिये, नहीं तो ये 'मन्सेधू' भी क्या कम कटखने होते हैं ?

लेदर-मेडिल !

आजकल अपनेराम कुछ घबड़ाने से लगे हैं। आप पूछेंगे—क्यों ? ठीक है—आपका पूछना उतना ही वाजिब है, जितना कि मियाँ ठिन्ना को (माफ कीजिये; अपनेराम को 'ज' का उच्चारण ठीक से आता नहीं) 'कब्रिस्तान' का मिलना या जितना कि अपने 'सन्त' पन्तजी का 'प्रीमियरी' करना या जितना कि 'आर० एस० एस०' (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) वालों का लेफ्ट-रैट भाँजना—

मगर जरा समझ-बूझ से सवाल किया करें !

खैर, आपने पूछ लिया है तो जवाब देना ही पड़ेगा, नहीं तो कहीं आप भी 'एबाउट-टर्न' हो गये तो अपनेराम को पूछेगा कौन ?

हाँ ! तो अपनेराम इसलिए घबड़ाने लगे हैं कि आजकल दनादन 'फायर' की तरह नये लेखकों का जन्म हो रहा है। बर्थ-कण्ट्रोल' की 'थ्योरी' माई-बप्पा करने लगी है। और लेखकों के जन्म के साथ ही साथ उतने ही सम-पादक, समआलोचक और न

जाने कौन-कौन 'सम-सम' (अलीबाबा वाला सम-सम नहीं) पैदा हो रहे हैं।

एक बात और आपको बताऊँ ?

आजकल प्रेस वाले भी गर्भधारण करने लगे हैं और धड़ाधड़-फड़ाफड़, नई-नई बालिकाओं यानी कागजी पत्रिकाओं को जन्म देने लगे हैं—पता नहीं उतने ही पाठक भी गर्भ में आ रहे हैं या नहीं, इसकी रिपोर्ट अपनेराम को अभी नहीं मिली है यद्यपि अपने 'स्पेशल करेस्पाण्डेण्ट' को हिन्दुस्तान (पुराना नहीं, नया यानी कट-छँटकर जो बच गया है) के हर 'मैटरनिटी' अस्पतालों में जाकर पता लगाने का आदेश दे चुका हूँ।

तो ऐसे ही 'गर्भधारण' के इच्छुक एक 'प्रेस-कीपर' महोदय, जेठ की जलती-तपती दोपहरी में अपनेराम के कोठे पर आ टपके।

बोले—"ऐ हो चमगादड़ जी !"

मैंने कहा—"हाँ हो ! क्या आज्ञा है ?"

"देखते नहीं ?"—वे बोले—"आजकल सभी प्रेसों से किस जोरों की पैदावार हो रही है....तुम भी जरा जोर मारो तो हम भी एकाध पैदा कर लें...."

"यानी पत्रिका ?"—मैंने पूछा।

"हा जी !"

"अच्छा जी ! अपने राम तो चौबीसों घण्टे, साठों मिनट और साठों सेकेण्ड जोर मारने को तैयार हैं...."

"तो पक्का रहा ?"

"एकदम पक्का कटहल !...." मैंने कहा।

बस, उसी घड़ी से एक पत्रिका निकालने की धुन सवार हुई, क्योंकि महा-सम-पादक तो मैं ही था न ? कितने ही नये-पुराने, जवान-बुड्ढे लेखकों के पास गया—उमड़ती-घुमड़ती लेखिकाओं के भी चपल चप्पल छुए—तो एक ने तमककर कहा—'चालीस रुपये निकालो तो एक कहानी दूँगी, नहीं तो एबाउट-टर्न, क्विकमार्च !'

और सचमुच मुझे 'किकमार्च' कर देना पड़ा, क्योंकि "गर्भ-धारक" महोदय तो चालीस कौड़ियाँ भी नहीं देना चाहते थे, चालीस रुपये की कौन कहे, जिसके पेट में पौने अस्सी से भी ज्यादा अठन्नियाँ होती हैं। मगर पत्रिका निकालना था जरूरी—गर्भ धारण करके वे महोदय अब "डिलेवरी" के लिए छटपटा रहे थे-और इधर लेखकों ने अहिंसक-हड़ताल कर रक्खी थी।

समस्या विकट थी, परन्तु अपनेराम तो अपने भी चचा हैं—चट्ट से ऊपर सुन्दर टायटियल छापकर और भीतर कोरा कागज लगाकर पत्रिका का प्रथम अंक तैयार कर दिया।

बीच के एक पृष्ठ पर छपा था—"चूँकि हमारी पत्रिका के प्यारे पाठक अभी गर्भाशय के भीतर ही साँस ले रहे हैं और जो बाहर आ चुके हैं, उन्होंने अभी आँखें तक नहीं 'फोड़ी' हैं (पिल्ले जब पैदा होने के चार छः दिन बाद देखने लगते हैं तो उसे आँख "फोड़ना" कहते हैं) अतः तब तक पत्रिका इसी हालत में निकलती रहेगी—और दूसरा कारण, जो हिमालय जैसा बड़ा है, वह यह है कि हमारे वर्तमान लेखकों ने खीस निपोर दिया है, अब नये लेखकों के पैदा होने तक हमें इसी तरह रेंगना है...."

अरे साहब! कुछ न पूछिये! पत्रिका के निकलते ही धूम मच गई—धूम! चारों ओर से मुझ पर 'लेदर-मेडिल' (जूता नहीं) बरसने लगे।

बोलो, महा-सम-पादक की ...

भाखा की लड़ाई!

भई आजकल भाषा का भी झगड़ा कौरव-पांडव की लड़ाई का रूप धारण कर बैठा है! एक ओर हमारे पूज्य बापू (पता नहीं उनके कितने लड़के हैं।) कृष्ण की तरह द्रोपदी का चीर बढ़ाते हुए अपनी जादू की लकड़ी घुमाकर कहते हैं—"हे बचवा लोग! हिन्दी-मत्सेधू और उर्दू-मेहरारू ने सदियों तक संघर्षण करके जिस

बिटिया को पैदा किया है, उसी का नाम हिन्दुस्तानी है—अभी जवान है, छलकती है छलछल। इसे अपनाओ—इसके साथ शादी करो—हम भी बूढ़े हो चले। यह शादी, यह चिर-मिलन देख कर एक सौ सवा पचीस बरस तक आत्म संतोष की साँसें लेते रहेंगे....”

दूसरी ओर साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा वाले भीम की तरह दसमनी गदा झुला कर कहते हैं—“सुनो हे लोगों! नागरी ही हमारी राष्ट्र-भाषा हो सकती है—१५ अगस्त के बाद 'स्वतन्त्र' होकर अपने परदादों के मुँह पर 'करिखा' मत पोतो—बोलो तो नागरी ही, लिखो तो नागरी ही और पढ़ो तो नागरी ही... बोलो! सर्व गुणकारी नागरी की....”

अपनेराम भी ताव में आकर जै बोल ही देते हैं, परन्तु अपने को न तो 'बुढ़ऊ' की बातों से प्रसन्नता है और न तो 'सम्मेलन-सभा' वालों की जय-जयकार से उत्तेजना।

अपनी राय तो यह है कि 'भाखा' वही बोली जाय तो 'आमफहम' हो, यानी जिसे सब समझ सकें—ऐसा न हो कि भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस खड़ी पगुराय—टिकट को प्रवेश-पत्रिका, कचहरी को न्यायालय, जूते को चरणपादुका, कलम को लेखनी और दावात को मसिपात्र कहने में अपनेराम की जबान लटपटायेगी जरूर, यद्यपि शहरी और देहाती गाली बकने में अपनेराम 'सरफर' हैं। वही हाल है कि 'सदा के सरफर और कन्नी के कुँवार....”

लिपि के विषय में अपन तो नागरी की ही तरफ हैं। फरसा चलाने वाले अपनेराम के 'खुरखुर' हाथों से उर्दू की 'कीरागोजरी' लिखावट लिखते नहीं बनेगी और अपनेराम तो यह चाहते भी नहीं कि नुकते की कमी से 'खुदा जुदा हो जाय....” लिखो किश्ती और पढ़ो कस्बी....लिखो रामचरन और पढ़ो 'दाम हरन....' तो ऐसी लिपि से क्या लाभ?

अब रह गई यह बात कि कौन-सी 'भाखा' पढ़ी जाय? सो

अपने राम तो 'बरद-मूत' तक पढ़ लेते हैं, फिर ऍंगरेजी, उर्दू और हिन्दुई की तो बात ही क्या है ? भई ? समझे न आप ?

बोलो तो सड़ासड़ सरल भाखा और लिखो तो दनादन 'क ख ग घ' और पढ़ो चाहे 'ए बी सी डी' चाहे 'अलिफ बे पे ते' चाहे क से कौआ—ख से खरगोश....कोई मुजायका नहीं ।

आधे मुसलमान !

उस दिन अपने एक 'हिन्दू-महासभाई' दोस्त से अपने राम की जबानी 'उठा-पटकी' हो गई....अपन तो जबान से बेहद तेज हैं और 'सनई' जैसे हाथ-पैर से जरा कमजोर... इसलिए 'वार' के समय हाथ-पैर और बन्दूक-तोप की जगह जबान ही अधिक चलाते हैं ।

हमारे दोस्त बिगड़कर कहने लगे—"सुराज हो गया—गाय का काटना तुरन्त बन्द होना चाहिये....ये कांग्रेसी तो आधे मुसलमान हो गये हैं, इनसे क्या आशा रखी जाय ?"

लीजिये साहब ! सुना न आपने ?

कैसी मार्के की बात कही हमारे दोस्त ने ? अपना हृदय तो दलदल की तरह गदगद हो गया—मन में आया कि इन्हें भी एकाध मेडल (लेदर का नहीं, टीन का) अता फरमाया जाय ।

मगर यह सोचकर कि हमारे दोस्त तो एकदम धोती से बाहर हो गये हैं (वे पायजामा भी कभी-कभी पहनते हैं) मुझे मन दबाकर रह जाना पड़ा । हमारे महासभाई दोस्त तो....की तरह खटखने होते हैं । आश्चर्य तो यह है कि गोबध-बन्दी के लिये शेर-से दहाड़ने वाले ये 'सन्मार्गी' उन दिनों किस बिल में घुसे थे, जब लड़ाई की गोली सनसना रही थी और कितने जन (स या दुर) विलायत से 'दटके' आये हुए गोरों को खाने के लिए गाय-बैल-भैंस चालीस रुपये मन पर तौल कर बेंच रहे थे सरकार के हाथ ?

उस समय तो शेर की तरह दहाड़ने की कौन कहे, कोई ऊँट

की तरह बिलबिलाने वाला भी दिखाई नहीं पड़ता था। अपने भाइयों के हाथ में शासन की 'डोरी' देखकर अब इन्हें भी 'खींव' करने का मौका मिल गया है। है न ?

कांग्रेस का नाश हो !

एक दिन साँझ के समय अपने एक अन्तरंग (जल तरङ्ग नहीं) मित्र अपने पतले-गोरे हाथों में एक सुन्दर-सी पत्रिका पकड़े आये और मेरे सामने पटक कर बोले—"लो देखो !"

इस 'पटकनी' से अपनेराम 'अंटाचित्त' होते-होते बचे।

"क्या बात है ?...." पूछा मैंने।

"बस जबान मत हिलाओ....इसे उठाकर देखो तो पहले...." मित्र ने कहा।

मैंने पत्रिका उठा ली। निकली थी नई-नई—दो शब्दों के नाम में एक शब्द 'उर्दू' का था और दूरा संस्कृत का या यों कहिये कि सुशुद्ध हिन्दी का। सम्पादक मण्डल में तीन देवता थे और एक देवी (यह 'ऐवरेज' अपने राम को अधिक पसन्द नहीं आया)।

"यह क्या ऊलजलूल उलट रहे हो !"—मित्र महोदय 'चील- झपट्टा' मार कर मेरे हाथों से पत्रिका छीन ली—"ल ओ मैं इसका सम्पादकीय सुनाऊँगा...."

मुझे बुरा तो अवश्य लगा। यहाँ तक कि नाक की सुरङ्ग के रोएँ भी खड़े हो गये परन्तु ऐसे अवसरों पर अपनेराम को अपना 'टेम्परेचर' नारमल से भी नीचे कर लेना खूब आता है। अतः मैं ९५ डिग्री के मूड में उँकड़ू बैठ गया और बोला—"पढ़ो भाई ! देखूँ क्या लिखते हैं माननीय सम्पादक महोदय...."

मित्र पढ़ने लगे बड़े ताव से—

"कांग्रेस के कर्णधार आज हमारे देश को रसातल में लिए जा रहे हैं। इनकी बाजुओं में ताकत नहीं, सिर्फ सर पर ताज रखकर शहंशाहे-हिन्द बन बैठे हैं। इतनी खूँरेजी और दङ्गों के लिये ये ही

लोग जिम्मेदार हैं। हमारी माँ-बहनों की लज्जा इन्हीं के कारण लुटी है"—मित्र महोदय पढ़ तो ले गये थे बहुत कुछ, परन्तु अपने को याद उतना ही रहा जितना ऊपर लिख दिया है।

टिप्पणियाँ लिखते-लिखते शायद सम्पादक महोदय (या महोदया) ऐब नारमल (यानी ११० डिग्री) तक चले गये थे, तभी तो भावना में इस प्रकार बहकर स्वप्न देखने लगे।

अपने राम भी बीच गङ्गा में, स्टीमर पर बैठकर, यह बात बोल सकते हैं कि कांग्रेस का नाश हो—नाश हो—नाश हो ?

मगर यार। एक बात कहूँ ? इस तरह भौंकने से हाथी अपना रास्ता थोड़े ही छोड़ देगा।

छुक-छुक छइयाँ !

अपने राम के दोस्तों की संख्या उतनी ही बड़ी है, जितनी कि आपके 'चूल्हे-चक्की' वाले घर में चूहों की या जितनी कि मलेरिया के 'जानमारू' कीटाणुओं की। समझे न आप ? यानी मच्छरों की। मच्छरों में एक बात जो 'मच अप्रिसियेबुल' यानी अत्यधिक 'तारीफबुल' है, वह यह कि मधुर 'भिनभिनाहट' से भरे हुए ये जीव रोज जीते-मरते हैं अर्थात् इनकी जिन्दगी की लम्बाई अंगुल दो अंगुल से ज्यादा नहीं होती है।

परन्तु अपने इन 'अमर' दोस्तों को क्या कहूँ, जिन्हें 'अजर अमर गुणनिधि सुत होहू' का विकट वरदान एकदम 'फोकट' में मिल गया है ? जहाँ तक अपने राम के 'तोले' भर के दिमाग को याद है, पिछले साढ़े बारह साल के अन्दर अपना कोई दोस्त राहे-अदम को रवाना नहीं हुआ यानी एक ने भी स्वर्ग का 'डायरेक्ट' टिकट नहीं कटाया। यों बीमार तो कई एक कई बार पड़े और आशा थी कि इस बार ये कम से कम 'रिटर्न' टिकट कटाकर स्वर्ग

तो अवश्य ही जायेंगे । परन्तु पूछिये मत ! तेरही के मालपूए खाने की आशा लेकर दूसरे दिन अपने राम जब 'मातम पुर्सी' के लिये गये, तो उन्हें एकदम हिमालय की तरह गम्भीर, अशोक स्तम्भ की तरह अचल और 'गली में टूटी टाँग घसीट कर रेंगने वाले' कुत्ते की तरह जीवित देखा । लाचार होकर अपने राम को माथा ठोंक लेना पड़ा, यद्यपि अपना माथा न तो अधिक चौड़ा ही है और न तो पत्थर की 'सिल्ली' की तरह 'अटूट-अफोड़' ही ।

इन दोस्तों में से कई तो ऐसे महानपुरुष (ताड़ जैसे महान और कुत्ते की पूँछ जैसे टेढ़े भी) हैं कि 'मारू' मच्छरों की तरह जिसे 'कट्ट' से काट खाया वह बेचारा तड़पा, रोया और 'राम-नाम सत्य है' कर गया । ऐसे ही एक दोस्त की बात कह दूँ आपसे । उनका नाम तो दबी जबान से भी मत पूछिये, क्योंकि आजकल श्रीमती 'दीवारों' के भी कान तेज हो गये और यदि कहीं दोस्त जी....

कान में किसी ने 'फूँ' कर दिया और वे हजरत कहीं 'मरकहे' बैल की तरह भड़ककर 'लेफ्ट-राइट' करने लगे, तो अपनी पत्रिका का कूबड़ ही निकला समझिये —क्योंकि उनके हाथ में इस समय 'पावर' है (बिजली का पावर नहीं) और वे पूरे 'पावर-हाउस' बने बैठे हैं । जहाँ जरा-सा कानी आँख से इशारा कर दिया कि चिनगारियाँ उड़ पड़ेंगी और घास-फूस की, कागज-पत्ते की अपनी मासूम पत्रिका, जवानी के पहले ही, जलकर सती हो जायगी ।

हाँ तो, अपनेराम के ये मित्र एम० एल० ए० हैं । एम० एल० ए० के माने शायद आप 'मेम्बर आफ दी, लोफर्स एसोसियेशन' न लगा लें, क्योंकि आजकल के 'पा-ठक' बाल की खाल निकालने के आदी हो गये हैं, जो अपनेराम को कत्तई पसन्द नहीं—'तोला भर' भी पसन्द नहीं बावन तोले की कौन कहे ? इसलिये आपसे पहले ही बता दूँ कि एम० एल० ए० के माने होते हैं 'मास्टर आफ दी लम्पट आर्ट्'स'—अरेरे ! माफ कीजिये, 'त्रुटि' हो गई—एम० एल० ए० के माने 'मेम्बर आफ दी लेजिस्लेटिव एसेम्बली' होते हैं ।

अपनेराम जानते हैं किस इस स्वतन्त्रता के युग में आप 'हिन्दुई' के ही शब्द सुनना चाहेंगे—परन्तु क्या करें भाई ! एम० एल० ए० का कोई तत्सम शब्द अपनेराम जानते ही नहीं या वह प्रचलित नहीं है। अगर प्रचलित होता तो अपनेराम के कान की गुफाओं में जरूर शरण लेता। और—फिर 'टेढ़ी-मेढ़ी' संस्कृत की टाँग कौन तोड़ने जाये, जब सीधा-सीधा, नन्हा-मुन्ना-सा शब्द एम० एल० ए० मौजूद है ? अपनेराम कोई बाल्मीकि या कालीदास तो हैं नहीं और न तो उनके 'खानदानी' ही हैं, कि बालक, बालकौ, बालकाः नाक की 'ठोर' पर रक्खा रहे।

तो हमारे मित्र महोदय एम० एल० ए० हैं। मगर जन्म से ही उन्हें एम० एल० ए० मत समझ लीजिए, क्योंकि उनकी पैदाइश घुरहू पण्डित के 'पत्रा' के अनुसार 'कन्या' राशि में हुई थी। हुआ करे 'कन्या' राशि में, अपनेराम को तो न इन 'कन्याओं' पर विश्वास है, न 'मीनों मेषों-मकरों' पर और न इन 'पोथी-पत्रा तिलक-मुद्रा' धारी पण्डितों पर ही। फिर हमारे मित्र महोदय तो अपने 'लँगोटिया' यार हैं (मैंने ही उन्हें लँगोट बाँधना सिखाया था)।

'लड़िकाई' में बीसों, साढ़े बीसों बार उन्हें 'कालाजंग' लगाकर वह 'पटकनी' दे चुका हूँ कि यदि वे घुरहू पण्डित के गणनानुसार 'कन्या' राशि के होते तो तौबा तिल्ला, यानी 'माई-बप्पा' करने लगते। 'काँखते-कूँखते' हमारे मित्र ने किसी तरह 'मिडिल-पास' कर लिया, फिर थोड़ा-सा और लटककर 'हाई स्कूल का दामन चूम बैठे। उनकी यह 'लपकनी' देखकर तो अपनेराम 'सेण्ट-परसेण्ट' दङ्ग रह गये—सोचा, शायद 'कन्या' राशिवाले इसी प्रकार की 'लपकनी' भरते हों ?

घर के गरीब आदमी थे....पूरे 'फटकचन्द्र गिरधारी'—उनके पिता, उन्हें नौकरी करने और 'कमाने' (पैसा कमाने) के लिए उनकी 'कन्या राशीय' पीठ पर दो-चार 'मुग्दर' रोज ही जमाते थे—परन्तु अपने मित्र की तरह सहनशीलता मैंने किसी जानवर में

भी नहीं देखी, कुत्ता-बिल्ली-चूहा-चमगादड़ या आदमी, किसी में भी नहीं। मित्र बेचारे 'लात' खाकर 'मात' हो जाते थे, परन्तु नाक से साँस तक नहीं लेते थे। श्री मित्रजी की माता का देहान्त पहले ही हो चुका था, और लात घूँसे जमाते हुए बेचारे पिता भी एक दिन 'सटक सीताराम' हो गये। पीछे का पगहा तो टूट ही चुका था, अब आगे की नाथ भी टूट गई और मित्रजी 'खाय-मोटाय' कर पूरे 'गदहा बन गये।

उसी समय 'पुरवैया' हवा चली और हिन्दुस्तान (पुराना) की सरजमीं पर कितने ही नेताओं और तिरङ्गे झण्डों का उत्पादन हुआ। सरकार भी 'कटही कुतिया' बनकर भूँकने लगी। देश के सभी मयखाने, तोड़-मरोड़कर जेलखाने बना दिये गये और भारी भरकम नेता उन 'ब्लैक-होलों' में ठूँसे जाकर 'कचालू' बन बैठे।

जाने कैसे अपने दोस्तजी भी सन् ३० में जेलखाने की 'झलरी' रोटी चख आये। बेचारे बेकार थे, सो जेल जाकर 'बाकार' बन गये। घर खाना नहीं मिलता था, तो सोच लिया कि 'सरकार-सास' के मेहमान बनकर 'आजाद-बेटी' ही ब्याह लायें।

सो हमारे मित्र महाशय भी, बदन पर दूसरे का खून मलकर 'शहीद' बन गये। जबान भी कतरनी की तरह 'कच-कच' चलने लगी। रङ्ग-मंच पर नाचने भी लगे—यानी भाषण भी देने लगे।

धीरे-धीरे नेतागिरी का तमगा उनकी पीठ पर लटक गया। अब वे सदैव व्यस्त (अस्त नहीं) रहने लगे। भोली जनता की सिसकती हुई कमाई पर 'मालपूए' उड़ाते रहे। वही मित्र, जो पहले 'टिटिहिरी' की टाँग जैसे, सिमटे-सिकुड़े थे, माल 'चाभ' कर गैंड़े जैसे भीम-बदन हो बैठे।

और आज, जब भारत के कोटि-कोटि नेता (देवता कहिये उन्हें—देवता !....ददाति इति सः देवता....नयति इति सः नेता) आजादी की चीर खींचकर, उसे एकदम नग्न लाकर हमारे सामने खड़ा कर दिये हैं, तो एम० एल० ए० बन गये हैं।

'नग्न आजादी' का नाम सुनकर आप भड़कें नहीं। आप स्वयं देख लें कि हजारों वर्ष के बाद यह 'छटांक' भर की आजादी पाकर हमारी जनता कितना नंगा-नाच नाच रही है? खुशी से 'सराबोर' होकर उसने खून की होली खेल डाली—माँ-बहनों की अस्मत से 'फागुन' के महीने में भद्दा मजाक कर लिया।

यही तो 'नग्न आजादी' के लक्षण हैं? हमारे 'बन्दर' पुरखे भी इतने 'ऐडवान्स्ड' न रहे होंगे! मगर इसमें न तो हमारे नेताओं का कसूर है और न तो इन अवसर वादी 'एम० एल० ए०-ओं' का—कसूर हमारा-आपका है, सौ परसेण्ट कसूर। आप ही बताइये कि हमारे नेताओं को अब इतनी फुर्सत (अवकाश) कहाँ कि वे आपकी कमर पकड़कर लटकें और कहें—"हे भइया लोग! धीर धरो, छूरी-छूरा का खेल मत खेलो, धरम के पीछे 'आन्हर' मत बनो..."

बेचारों को दावतें खाने और जेबें भरने से तो फुर्सत है नहीं, फिर ऐरे-गैरों के लिए वे क्यों परेशान हों? बहुत दिनों तक जेल की रोटी खा चुके हैं नऽ? तो अब सामने 'जंघई' के 'मोतीचूर' देखकर कौन नहीं ललचे-लपकेगा?

सो भैया! अब इन नेताओं का पिण्ड छोड़ो। मित्र महोदय को ही देखिये—इस समय उनकी बीसों ऊँगलियाँ जो है शो, घी में नहीं तो कम से कम 'कड़ू' तेल में तो जरूर हैं। उनकी पिछली 'एक सौ साढ़े एक' पीढ़ी, तक कोई 'तेलगाड़ी' (यानी कार) पर न चढ़ा होगा। परन्तु आज देखिए तो दस हजार की 'आस्टिन' बँगले पर 'गैरेज-बन्द' रहती है और काम पड़ते पर हमारे माननीय एम० एल० ए० जी को परी की तरह ले उड़ती है—एकदम परी की तरह जनाब! कि आप देखते ही रह जायँ, मुँह बाये, पलक खोले, दिल थामे। हाँ?...आपको यह देखकर ग्लानि तो जरूर होगी की आप ही के बनाये, दो साल पहले 'दुटही' चप्पल घसीटने वाले ये नेता अब आपको जमीन पर छोड़कर स्वयं आकाश में

उड़ा करते हैं, आपकी कुछ परवाह नहीं करते। अगर ऐसी ग्लानि कभी आपको सताये, तो पास की पोखरी में जाकर चुल्लू भर पानी में....

समझे न आप! डूब मरिये साहब! और क्या? इस 'घिस-घिस' से तो वही अच्छा है। तो अपने मित्र जी एम० एल० ए० की पूँछ लगाकर भी अपने राम को भूले नहीं हैं। कभी-कभी अपने 'घोंसले' में आ ही टपकते हैं। ऐसे महान् व्यक्ति को अपने पास देखकर, आप सच जानिये, मैं पेड़ की तरह कट जाता हूँ। परन्तु हमारे मित्र जी हैं कि पूछिये मत–वही सरलता, वही अन्दाज और वही 'कन्याराशीय' मुस्कान—कोई अन्तर नहीं।

अभी उस दिन वे हँसते-मुस्कराते-बिजलियाँ गिराते आ पहुँचे तूफान मेल की तरह–यों समझिये कि 'टपक' पड़े। एकदम पक्के आम की तरह। उनकी 'टपकन' देखकर भी अपनेराम को कुछ विशेष आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि 'राजा-दऊ' के 'मूड' का क्या ठिकाना? टपकते ही बोल पड़े—"चलते हो?"

"कहाँ?"—पूछा मैंने।

"पार्टी में...."

"कौन-सी पार्टी? सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, लेफ्टिस्ट या राइटिस्ट?...."

"पूरे गधे हो"—मित्र महाशय 'कन्या' राशिवाला अपार प्यार, शीरी जबान की नोंक पर लाकर बोले—"समझते ही नहीं कुछ! आज सेठ मथुरादास के यहाँ पार्टी है–उनकी बेटी की शादी थी नऽ—उसी सिलसिले में आज कुछ खास-खास लोगों की दावत है...."

"दावत?"—अपनेराम तो बिजली की तरह चमककर चौंक पड़े, फिर धीरे से अपनी उत्सुकता पर 'कन्ट्रोल' रखकर बोले—"भाई! राशन का जमाना है। मेरे बढ़ जाने से कहीं किसी चीज में कमी आ जाय, तो...."

"तुम वही रहे, बबूल के सत्ताइस पात!....अरे मरदे आदमी! कमी उन्हें पड़ती है, जिन्हें धन की कमी होती है....

सेठों की अन्धी गाँठ में किस बात का अभाव ?... चलो, जल्दी करो।"

मित्र महोदय के मुख से 'मरदे आदमी' का सम्बोधन उतना ही मीठा लगा, जैसे 'खाँड़' की चाशनी। मित्र जी हमारे 'डबलिंग' करने में एक हैं। कैसा 'डबल' सम्बोधन एक क्षण में ही कर डाला ? मरद भी और आदमी भी....और पुरुष-मनई-मनसेधू भी....और नारी भी, औरत भी और मेहरारू भी....भई वाह ! लि.......लिल्लाह ! विस्मिल्लाह !

सो अपने राम झटपट 'गर्दन फाड़कर' 'स्टैण्ड-अप' हो गये और कपड़े-लत्ते-से 'रेडी' होकर एम० एल० ए० जी की दुम से बँधे हुये पार्टी की 'अटेण्डेन्स' के लिए 'क्विक मार्च' हो चले।

सोचता जा रहा था कि आज तो 'माबदौलत' को खस्ता कचौड़ी या रसमलाई, रसगुल्ले, चमचम, टमटम आदि कितनी ही मीठी-तीती-खट्टी-खारी चीजें चखने को मिलेंगी। मालूम होता है कि उस 'जनम' में अपनेराम ने एक सौ एक नहीं, तो कम से कम सौ 'राजसूय' यज्ञ जरूर किया था, तभी तो ऐसा गदराया सुफल मिला—नहीं तो 'पराया अन्न दुर्लभः' साहब ! सोच-सोच कर मुँह में पानी भरा आ रहा था, और मैं उस 'गंगाजल' को बार-बार जमीन पर थूकता जा रहा था। आप ही बताइये कि मुँह में समुद्र का उफान देखकर किसे 'उबकाई' नहीं आवेगी ?

एक सजीले बड़े से कमरे में तोशक-तकिया लगा था। पार्टी में मेहमान मौजूद थे और हमारे 'तोंदइल मेजबान' सेठ साहब, बड़ी नम्रता से, यथाशक्ति तोंद की 'उठान' पचकाने का प्रयत्न करते हुए बातें कर रहे थे। एम० एल० ए० जी को देखकर 'जयहिन्द' का नारा ऐसे जोर से गूंजा, जैसे अँधेरी रात में एक स्यार का 'हुँवा-हुँवा' सुनकर उसके भाई-विरादर भी 'हुँवाने' लगे हों।

मित्र महोदय के पास मैं भी बैठा था। उस 'सफेदपोशीय' पार्टी में मेरी उपस्थिति वैसी ही थी, जैसे चाँद के नमक जैसे

(यानी नमकीन) सफेद चेहरे पर काला दाग या जैसे 'दाल-भात' में हिजहाइनेस मिस्टर 'मूसरचन्द'-मगर क्या करता ? अब तो आ ही गया था और बैठे-बैठे पहले ही की तरह समुद्र (यानी 'लार') टपका पड़ रहा था, परन्तु थूकने का स्थान न होने के कारण 'घुट्ट-घुट्ट' करके सारा समुद्र सोखता जा रहा था—आँखें भी तरस रही थीं, पकवानों को देखने के लिए और नाक भी तड़प रही थी, कचौड़ी की महक सूँघने के लिये।

छल ! छल ! छल ! कुछ छलछलाहट सुनकर अपने राम ने अपनी आँखें खिड़की की तरह पूरी खोल दीं और देखा—गिलासों में लाल-लाल शर्बत ! वाह ! क्या कहने थे ? शर्बत पीने के लिए तबीयत, बेलगाम घोड़े की तरह उछलने-कूदने लगी। लाख रोकता था, मगर 'ससुरी' मानती ही न थी।

सब 'पीने' लगे। मैंने भी गिलास होठों से लगाया। लगाते ही नाक में जाने काहे की सुगन्धि घुसी कि वह एकाएक भड़क उठी और 'अबाउट-टर्न' होकर 'डबल-मार्च' करना चाहने लगी।

"पीते क्यों नहीं जी ?"—मित्र जी ने पूछा।

"यह क्या है ?"—कहा मैंने।

"शराब !...."

"खराब ! एकदम !"—मैंने अजन्ता की तरह मुँह 'बा' दिया था और उस खुली हुई गुफा से रेडियो की तरह 'आटो-मैटिकली' शब्द निकलते आ रहे थे—"ये खद्दर के कपड़े....यह नेतागिरी....यह शराब का गिलास !....खराब....!"

और उसी समय ? छूम छनन !....छुक-छुक छइयाँ !....

कान खड़े हो गये, बिच्छू के डङ्क की तरह और आँखें चमक उठीं, ठीक ६० वाल्ट के बल्ब की तरह ! साकी आ गई थी नऽ ! नाच-गाना शुरू हो गया और वह हठ कर-करके सबको पिलाने लगी। मित्र महोदय पर उसका 'खास' तीर चलता था।

सच कहता हूँ—उस 'लोफर्स-असोसियेसन' में शराब की नदी

बह चली और उसके 'मेम्बर' यानी अपने मित्र महोदय पार्टी खतम होते-होते नशे में बुत्त होकर मुर्गा बन गये।

मुझसे बोले—"नशा ज्यादा हो गया है....तुम जा सकते हो....मैं यहीं रहूँगा।" इसके बाद वे उस वेश्या का हाथ पकड़ कर कोठरी में जाने लगे, तो सेठजी ने कहा—"हजूर! मेरा ख्याल रखेंगे...."

"जरूर, जरूर! सेण्ट-परसेण्ट जरूर!" मित्र जी ने कहा। वेश्या उनकी बगल में लता बनी हुई खड़ी थी।

'गवर्नमेण्ट से हमारा वह कन्ट्रैक्ट जरूर हो जाय...." सेठ जी ने पुनः कहा।

"हो जायगा...अगले सेशन में मैं असेम्बली में यह प्रस्ताव 'मूव' करूँगा..." कहते हुए मित्र महोदय, हसीना को साथ ले दरवाजे में घुसकर एकदम अन्तर्ध्यान हो गये।

अपनेराम भी, शराब से भरा गिलास वहीं छोड़ कर और पेट में कूदते हुए चूहे लेकर वहाँ से 'सात-पाँच-बारह' हो गये।

देखा आपने? इस बुरे जमाने की सारी जबाबदेही सिर्फ हमीं लोगों के सिर पर नहीं—इसके लिये वे भी जिम्मेदार हैं, जिन्हें हमआप 'ताव' में आकर जिम्मेदारी का पद दे चुके हैं।

जवानी में अँखियाँ भी बोलें!

सुनकर चौंक पड़े आप? भला आँखें भी कहीं बोल सकती हैं? अगर पूछिये मत साहब! ये 'गजब भरी' आँखें 'हिज मास्टर्स वायस' से भी ज्याना बोलती हैं। बोलने लगती हैं तो रुकती ही नहीं—धड़ाधड़, सरासर 'वह-वह' भेद की बातें बकती हैं कि 'फोटो-गिलास' या 'भक-भक' (अपनेराम के खूँटा काका रेडियो को 'भक-भक' कहा करते हैं) या 'तेइसकोप' (अपनेराम को वाइस के अंक से वेहद चिढ़ है) सभी पचड़े झख मारें।

'झख' मारने की भले याद दिखाई। एक हैं अपने मियाँ

'टिन्ना'—सो बेचारे 'झख' मारते-मारते 'बुजुर्ग' हो गये। मियाँई, कैलेण्डर के हिसाब से कुछ 'कम-बेस' तिहत्तर साल की उमर हुई—इतने दिनों तक 'झख' मारने में अपने 'मियाँ' जी ने 'वर्ल्ड' का रेकर्ड 'बीट' कर दिया ('बीट' से आप चिड़ियों वाली हरकत मत समझें)

हाँ साहब ! तो ये आँखें भी बोलती हैं—खासकर जवानी में, और 'खासुलखास' कर उस जवानी में, जो बुढ़ापे के दिनों में माल चाभ कर हासिल की गई हो और 'जर्जर' गातों में बेहद बुलबुले उठा रही हो। तो मियाँ 'टिन्ना' ऐसे ही 'लासुलखास' जवानी के शिकार हो गये हैं। गोरी बीवी से 'कब्रिस्तान' पाकर उनका बुढ़ापा भी कुलबुला उठा—सो आजकल वे एकदम २५ डिग्री (यानी २५ बरस) के नौजवान बन बैठे हैं। जवान न हो गये होते तो 'सल्तनते कब्रिस्तान' के 'शहंशाहे आलम' का कार्य किस तरह सम्हालते ? कोई मामूली भार थोड़े ही है उनके 'दुटहे' कन्धों पर; दो-चार गदहों का बोझ तो जरूर ही होगा।

मियाँ टिन्ना जवान क्या हुए, बस उनकी आँखें 'दना-दन्न' बोलने लगीं। गोरी 'बी' से आँखों में बातें हुईं और गठबन्धन हो गया। मुहब्बत तो इसी को कहते हैं कि 'दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई'—आग लगी, लपटें निकलीं और और कलकत्ता, नोआखाली, पंजाब आदि की सूखी बस्तियाँ जलकर 'जीव विहीन मही मैं जानी हो गईं। भला नेहरू-पटेल' या 'आँधी-गाँधी' के बुझाये वह आग बुझ सकती ? वह तो आँखों के बोलने का फल था—'गुप-चुप' इशारे का परिणाम था—मुहब्बत के गठ-बन्धन का आखिरी अन्जाम था।

तो अपने 'टटके जवान' मियाँ टिन्ना, आजकल बहुत व्यस्त रहने हैं—'डे' में भी और 'नाइट' में भी। मियाँ ने अपनी असली जवानी के दिनों में काश्मीर के सौन्दर्य के बारे में बहुत कुछ सुन

रक्खा था—अब इस नकली जवानी में उनका दिल छटक कर हथेली पर आ गया है। उनकी आँखें काश्मीर का सौंदर्य देखकर बोलने लगीं हैं। एक इशारे पर 'भारत के स्वर्ग' में नर्क का दृश्य 'झकझकायमान' (यानी एकदम शीशे की तरह स्पष्ट) हो उठा है।

क्या अब भी आपको विश्वास नहीं हुआ कि 'जवानी में अखियाँ भी बोलें'—और जब बोलें तो कहर ढा दें।

एक बार असीम प्रेम से गदगदायमान होकर एक स्वर में बोलें—मियाँ जिन्ना की....ना....ना....कायदे आजम की...."

खबरदार! 'जै' मत बोलना, नहीं तो अपने मियाँ भड़क जायेंगे 'संसकीरत' सुनकर—बोलें—'जिन्दाबाद! जिन्दाबाद!'

कब्रिस्तानी 'भाखा' में 'जै' को यही कहते हैं।

तो 'कायदे आदम'—जिन्दाबाद!

जय हिन्द!

वह बापू और ये बेटे!

आप भी तो किसी के बाप होंगे ही। और अपनेराम भी एक कम आधे दर्जन बच्चों के 'फादर हैं। दिन-रात चीं-चपड़ करने वाली इस फौज को देखकर अपना सवा तोले का मस्तिष्क एकदम 'अप ऐण्ड डाउन' करने लगता है, तबीयत घबड़ा कर चिल्लाने लगती है। सोचता हूँ, खुदा न करे कि किसी बदनसीब को ऐसी फौज का कमाण्डर होना नसीब हो। बच्चों से ऊब जाने वाले, अपनेराम की ही तरह, मर्दुम-शुमारी के पचास 'परसेण्ट' लोग मिलेंगे। तभी तो गली-गली, मुहल्ला-कस्बा, सभी जगह 'बर्थकण्ट्रोलीय' सामान बेचने वाली दुकानें खुल गई हैं।

परन्तु वह बापू? वह बापू कैसा रहा होगा, जिसे एक दो नहीं, पूरे चालीस करोड़ बेटे-बेटियाँ थीं, जो सभी को प्यारा था, जो किसी का बापू था—किसी का वालिद और किसी का 'फादर'—

आज आप जलता चिराग लेकर खोज डालिये, आँखों पर

पत्थर का चश्मा लगाकर टटोलिये—मगर जो बापू चला गया, वह आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। वह तो चला गया, जमीन पर खून के लाल-लाल दाग छोड़कर। हमारा हिन्दू धर्म भी कितना उच्च है, जो छटांक भर के इन कपूतों को बाप के सीने में गोली मारने की सीख देता है। भारत के लाड़लों ने, आज भारत का एवं हिन्दुत्व का सर, हिमालय-सा ऊँचा कर दिया है। आज दुनिया की आँखों ने स्पष्ट देख लिया है कि भारतवर्ष में कितने कायरों का निवास है। इतिहास की शायद यह पहली घटना है, जबकि धर्म का अन्धा चश्मा लगाकर बेटों ने बाप की जान ली हो, खुशियाँ मनाई हों, मिठाइयाँ बाँटी हों।

हिन्दुत्व के पीछे पागल, इन कायरों को क्या मालूम कि हिन्दू धर्म में हिंसा एवं घृणा के लिये कोई स्थान नहीं—जहाँ अहिंसा है, विश्वबन्धुत्व है—जिसके अनन्य पुजारी हमारे पूज्य बापू थे।

और ये कपूत, बाप की जान लेकर हँसने वाले ये निशाचर, हिन्दू नहीं, म्लेच्छ हैं—और अपनेराम क्या कहें?

बापू को खोकर हम पागल हो उठे हैं—हमारी आँखों की रोशनी चली गई, हमारे दिल की धड़कन उड़ गई, हमारा शरीर रह गया, परन्तु आत्मा तो जैसे उनके साथ 'नौ दो ग्यारह' हो गई।

बापू के मरने की खबर पाकर अपनेराम रोये नहीं, हँसे—खूब हँसे यह सोचकर कि कैसे पागल हैं ये षड़यन्त्रकारी भी। बेचारे ने समझा होगा कि शमा के बुझ जाने पर अन्धकार छा जायगा—न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। मगर बेवकूफों को यह नहीं मालूम था कि शमा के बुझते ही सूर्य निकल आता है—और बाँस की जगह अब तो पीतल की बाँसुरियाँ बनने लगी हैं।

नौ फरवरी की बात है। अपने राम अपने घोंसले के सामने बैठे हुए, कागज और कलम से कुछ लम्बी उड़ाने भर रहे थे। तभी आ पहुँचे अपने एक अन्तरङ्ग मित्र कैलाश जी।

कैलाश जी, कैलाश पर्वत की तरह भीमकाय नहीं हैं, ओ० टी० आर० के इञ्जन की तरह एकदम दुबले-पतले और 'पावर फुल' हैं। शहर के 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के कर्णधारों में से एक हैं—इञ्जन ही समझिये उन्हें—एकदम आगे-आगे 'लेफ्ट-राइट' करते हैं।

घबड़ाये हुए से थे। दौड़ते आने के कारण हाँफ रहे थे। भद्द से मेरी बगल में बैठ गये और मस्तक का पसीना पोंछने लगे।

"भाई चमगादड़ !....' वे बोले।

"कहो—क्या है ?'—अपने राम ने पूछा।

"कोई रास्ता बताओ...."

"रास्ता तो वही है, जिससे तुम आये हो"—मैंने कहा।

'मजाक छोड़ो...."

"लो छोड़ दिया-एकएक बाईकाट !....अब बोलो...."

"पुलिस मेरे पीछे पड़ी है....'' वे बोले।

"कोई बदबूदार चीज होगी तुम्हारे पास—इन पुलिसवालों की नाक बड़ी तेज होती है कैलाश जी !"

"फिर वही मजाक !...."बिदककर वे बोले-'देखो, मैं तुम्हारे घर पर दो चार दिन तक छिपकर रहना चाहता हूँ...."

"वल्लाह ? शौक से !...मगर भइ ! राशन का जमाना...."

"क्या कहते हो ?....राशन-फाशन तो कभी का उठ गया, तुम्हारे बापू से भी पहले...." उन्होंने कहा।

"मेरे बापू ?"—मैं चकराया—जिस बापू के लिये आज सारी दुनिया रो रही है, उसे कैलाश जी ने कितनी सादगी से केवल मेरे लिये रिजर्व कर दिया—"क्या तुम बिना बाप के ही पैदा हुए हो कैलाश जी !...."

"तुम तो पूरे चमगादड़ हो...."

"बेशक ! सब आपकी कृपा है।" मैं बोला—"चलिये....'

"कहाँ ?" उन्होंने पूछा।

"अन्दर चलकर बैठिये—यहाँ आम रास्ता है...."

"कत्तई नहीं साहब !....जरा भी नहीं....आधी छटाँक भी नहीं...."

"कांग्रेस से आपका कोई सम्बन्ध है ?"

"नहीं !—यों भारतमाता के नाते वह मेरी मौसी लग सकती है...."

"क्या आप उसके चवन्नियाँ सदस्य भी नहीं हैं ?"

"अरे साहब ! चवन्नी-दुअन्नी पर अपनेराम अपनी सदस्यता नहीं बेचा करते...." मैंने कहा।

और मुझे सिड़ी समझकर रिहा कर दिया गया। गर्दन झाड़कर जब मैं बाहर निकला तो बदन में जान आई। रास्ते भर इन 'संघीय' दोस्तों को कोसता आया।

हमारे कुछ समाचार पत्र भी 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की प्रशंसा में अपनी कलम चलाया करते थे, जिनमें श्रीमान '....' भी एक थे—आशा है उन्होंने अब अपनी गलती पकड़ ली होगी।

चलिए ! अच्छा ही है। बापू को खोकर उन्हें अक्ल तो आई।

बोलिए—पूज्य बापू की स्मृति में एक स्वर से बोलिए, गाइये—

ईश्वर अल्ला तेरो नाम—सबको जन्म दियो भगवान् !"

बहिनी का पत्र !

अपनेराम ने जब से इस दुनियाँ में पैर रक्खा है, याद नहीं कि कभी कोई पत्र अपने पास आया हो, या किसी 'भलवन-मानुष' ने शब्दों में अपनी खैरियत पूछी हो। यों तो ससुराल में भी कुछ 'कम-बेस' दस-बीस आदमी हैं ही, जिनमें से एक दर्जन तो जरूर कलम पकड़ना जानते हैं—और मामा-मामी, फूफा-फूफी के यहाँ भी लोगों की जमात है—परन्तु पत्र लिखने के नाम पर सभी 'शून्याकार' हैं। भूलकर भी या सपने में कभी किसी ने पत्र नहीं लिखा कि भैया कैसे हो, जीते हो या एकदम निर्जीव हो गये हो ?

खैर ! अपनेराम को इन आलसी 'मन्सेधुओं' से कोई शिकायत

नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं, इस 'वार' ने सभी को 'बिजी' रहना सिखा दिया है। और नहीं तो ब्लैकमार्केटिंग में ही मशगूल रहा करते हैं, कम से कम। वह 'काला बाजार' भी खूब चला।

परन्तु उस दिन हमें घोर 'अचरज' हुआ जब श्रीमान् डाकिया महोदय को, चमड़े का झोला लटकाये अपने ठीक सामने 'स्टैण्ड-ऐट ईज' पर खड़े देखा।

'आप ही का नाम चमगादड़ है ?' उन्होंने पूछा।

"हाँ साहब, हाँ !—" मैं तड़ाक से बोला—"सिर्फ चमगादड़ नहीं—मेरा पूरा नाम है श्रीचमगादड़ !"

"वही....वही....आपका एक-पत्र आया है...." डाकिया साहब बोले।

"पुत्र ?...मेरा तो कोई भी पुत्र बाहर नहीं गया था सो आया कहाँ से ?....देख लीजिए, सभी घर में घेरा डाले हुए माई-माई चिल्ला रहे हैं"—मैंने कहा।

"आप भी अजीब आदमी हैं—आपकी चिट्ठी आई है—चिट्ठी....खत !...."

"चिट्ठी ?....अब समझा !....आप तो सुशुद्ध हिन्दी में बोलते हैं...." मैंने कहा।

डाकिया महोदय कुछ जवाब न देकर कार्ड मेरे हाथों में पकड़ा चले गये, गम्भीर गति से जूता मचमचाते हुए। अपने राम उनकी वह बाँकी, सरकारी चाल भर आँखों देखते रहे, देर तक।

फिर हमने चिट्ठी उलट-पलट कर देखा। अक्षर तो भुट्टे के दाने की तरह गोल-गोल, बड़े और अलग-अलग थे। लगता था जैसे खूब सम्हाल-सम्हालकर इबारत लिखी गई हो। जैसे चाँदी के सपाट सिल पर किसी ने मोती के दाने तरतीब से सजा दिया हो।

नीचे नाम देखा तो देखकर दिल का पेंदा गद्गद् हो गया। पत्र लिखने वाली थीं कोई—मैना देवी !—मैना ! "तुम डाल-डाल मैं पात-पात, बिना पकड़े हाथ न आऊँ" वाली मैना !

पढ़ने लगा । यों लिखा था—

भाई घमगादड़ जी !

"मैं 'चिनगारी' की वार्षिक ग्राहिका हूँ और उसमें आपकी उड़ान हमेशा पढ़ा करती हूँ। मुझे आपकी लिखावट बड़ी पसन्द आती है। परन्तु एक बात से मैं आपसे बेहद नाराज हूँ—वह यह कि आप नारियों में सभ्यता और प्रगति के घोर विरोधी हैं। आप जैसे व्यक्ति को तो हमें और भी सहारा देना चाहिये। आशा है, आप अपनी यह गलती बहुत जल्द सुधार लेंगे। पत्र दें और लिखें कि आप कैसे हैं ? आपकी--मैना देवी।

पढ़कर दिमाग कुछ ठंढा हुआ और मन को शान्ति मिली। सोचता था कि ये नारियाँ आजकल विद्रोहिणी बन गई हैं और बात-बात में पुरुषों से उठा-पटकी करने पर कमर कस लेती हैं—तो कहीं इसने भी पत्र में कोई 'गाली-गुफ्ता' न लिख मारा हो। मगर खैर हुई कि मैना देवी ने पत्र लिखते समय 'प्रगति' से काम नहीं लिया। इतना ही क्या कम है ? यह तो देवी मैना की असीस कृपा है।

तो उस पत्र का उत्तर देना आवश्यक था, अतः कागज पर लिखने लगा। सोचा इसे यों ही मोड़कर, पता लिखकर छोड़ दूँगा। यों लिखा—

बहिनी मैना ! राम-राम।

आपका पत्र पढ़कर तबीयत बर्फ की तरह शीतल और कमल के फूल की तरह 'खिलखिलायमान' हो गई। आप 'चिनगारी' की वार्षिक ग्राहिका हैं, इसकी अपनेराम को बहुत खुशी है—परन्तु सम्पादकजी भी एकदम छिपे रुस्तम निकले, मुझे बताया तक नहीं। खैर, आप मेरी 'उड़ान' पढ़ा करती हैं, इसका मुझे गर्व है। (गर्भ नहीं) मगर 'उड़ते-उड़ते' जरा सम्हलकर पढ़ा कीजिये—नारियों के पंख कमजोर होते हैं और हमें डर है, कि कहीं आप गिर न

पड़े। गिरें भी तो जरा ऊपर-नीचे देखकर, ताकि आपका शरीर सीधे मानसरोवर झील में पड़े—कहीं निशाना चूक गया या 'पैरा-शूट' ने धोखा दे दिया और आप 'एवरेस्ट' की चोटी पर 'अरर धड़ाम' हो गईं तो रामनाम....समझीं न आप ? आप तो.... 'अपटू डेटा' हैं, अतः समझदार तो होंगी ही। तो आपको मेरी लिखावट बहुत पसन्द आती है। परन्तु बहिनी, 'चिनगारी' में जो कुछ आप देखती हैं, वह मेरी लिखावट नहीं, वह तो जस्ते के अ.र जोड़कर, मशीनों द्वारा की गई छप-छप-छपाई है। मेरी असली लिखावट तो एकदम 'कीरा-गोजरी' है, जैसा कि आप इस पत्र में देख रही हैं। हां ! तो आप मुझसे बेहद नाराज हैं, ऐसा आपने लिख भेजा है। औरतों की नाराजगी से...क्योंकि अपनेराम के गाल बड़े 'सेन्सेटिव' हैं, जरा भी चोट बरदाश्त नहीं कर सकते, फिर चप्पल की चपचपाहट तो अत्यन्त करारी होती है। यह आपसे किसने कह दिया कि मैं नारियों की सभ्यता एवं प्रगति का विरोधी हूँ—वह भी घोर यानी एकदम महान ? यदि काने को काना या चोर को चोर कह देना बुरा है, तो अपनेराम बुरे ही सही। भला हो आप सरीखी भली नारियों का। आपने हमारा सहारा चाहा है; परन्तु बहिनी, बात तो यह है कि अपनेराम एक अपनी 'चमगादड़िन' जी को ही सहारा देते-देते दुबले होते जा रहे हैं, फिर दूसरों का क्या विश्वास दिलायें ? अन्त में आपने लिखा है कि 'पत्र दें और लिखें कि आप कैसे हैं ?....' सो पत्र तो मैं दे ही रहा हूँ। अब रह गया यह प्रश्न कि मैं कैसा हूँ ? क्या बताऊँ, ईश्वर ने अलकतरे जैसा रङ्ग मुझे दिया है....यानी एकदम काला हूँ और न पशु ही पूरा हूँ और न पक्षी ही...दोनों के बीच की जमात का हूँ। बाकी रूपरेखा, आप अँधेरे में जाकर, किसी चमगादड़ का दर्शन करके जान लें। बस, आज इतना ही।

मैं हूँ आपका ही—

भाई चमगादड़ !

पानी भी चलता है !

उस दिन अपने खूँटा काका ने एक ऐसी खबर सुना दी कि अपना दिल बरसाती भेढक की तरह हर्ष से 'टर्र-टों' करने लगा, यानी मोर बनकर नाच उठा।

उन्होंने बताया कि किसी हनुमानत्यागी (खूँटा काका 'महावीर' के नाम से चिढ़ते हैं, पता नहीं क्यों ?) ने एक प्रान्तीय रक्षक दल की स्थापना की है, जिसमें सभी जाति एवं वर्ण के स्वस्थ युवक लिये जाते हैं। प्रान्त की रक्षा करना एवं धार्मिक वैमनस्य को दूर करना ही इस दल का मुख्य उद्देश्य है।

सुनना था कि अपने राम का कलेजा बाँस पर चढ़कर 'ता-थेई' नाचने लगा। इतनी खुशी हुई कि बस पूछिये मत, केवल समझ लीजिये....हाँ !

अपनेराम बदन से तो ज्यादा पहलवान नहीं हैं, अलबत्ता दिल की रगें जरा 'पोढ़ी' हैं। कोई भी कड़ा काम हो तो उसमें अपनेराम एकदम आगे रहते हैं, हाल्डर में लगी हुई ठीक 'जी' निब की तरह या रङ्गमञ्च पर टँगे हुए ठीक ड्रापसीन-सी तरह।

सो हमने अपने मन में इन हनुमान त्यागी महोदय को एक लाख आठ बार धन्यवाद दिया। क्यों न हो ? त्रेता में साक्षात हनुमान जी थे और कलियुग में हनुमान जी के 'त्यागी' महोदय हैं। लंकावासियों को सावधान कर देना अपना कर्त्तव्य है, नहीं तो किसी दिन 'उलटि-पलटि लङ्का कपि जारी' वाली घटना हो जायगी। उस जमाने में तो सोने की लंका थी परन्तु अब घास-फूस की ही सही। कोई बात नहीं।

हाँ ! तो अपना भी इरादा हुआ कि इस रक्षक दल में भर्ती होकर कम से कम हनुमान जी का दर्शन तो कर लें। हो सकता है कि अधिक हठ करने पर श्री हनुमान जी का रोआँ

पसीज जाय और वे श्रीराम भगवान की एकाध झाँकी ही करा दें, क्षीरसागर ले जाकर। अपनेराम के लिए क्षीरसागर में बैठ सकना तो निहायत असम्भव है, क्योंकि पानी में मेंढक की तरह डुबकी लगाना और गौरैया की तरह पङ्ख फटकारना यानी हाथ-पाँव मारना हमें आता नहीं—फिर भी हनुमान जी की लंगूर यानी पूँछ पकड़े रहने पर डूबने का भय तो रहेगा नहीं, यह निश्चय भी पकने लगा है आजकल, समझ रखिये।

दूसरे दिन अपने राम भी, हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए पहुँच गये डिस्ट्रिक्ट सोल्जर्स बोर्ड के दफ्तर में। लखनऊ से (जी हाँ! सीधे लखनऊ से) कोई रिक्रूटिङ्ग आफिसर साहब भर्ती (जेबों की भर्ती नहीं) के लिए पधारे थे।

अपनेराम उनके सामने पेश किये गये। खड़े कर दिये गये, पेश क्या किये गये, जबरदस्ती 'अटेन्शन' में।

"नाम...." पूछा गया।

"श्रीचमगादड़!"—मैंने नाम बताया।

तो महाशय कुर्सी से आधा ऊपर उठकर बीच ही में टँग गये, मारे क्रोध के। उन्होंने समझा कि हम उनसे 'पदोरी' यानी मजाक कर रहे हैं।

"ठीक से बताओ अपना नाम!...." उन्होंने आज्ञा भरे स्वर में कहा?

"मैंने आपसे ठीक बताया है...." मैं बोला—"मेरा नाम श्री चमगादड़ ही है....विश्वास न हो तो आप श्री 'चिनगारी' सम-पादकों से 'लेडीफोन' पर पूछ सकते हैं....या बहिनी मैना को 'फोनोग्राम' देकर दिलजोई कर सकते हैं...."

"श्री चमगादड़ क्या बला है, कुछ समझ में नहीं आता...."

"समझ में न आये तो आप खाली चमगादड़ ही लिख लें.... यह तो समझ में आ ही जायगा....चमगादड़ तो सभी ने देखा होगा, आपने भी...."

"ठीक है...." वे बोले—"अच्छा जाति ?"

इस प्रश्न को सुनकर अपनेराम को चक्कर आ गया, यानी पूरे घनचक्कर बन गये हम। समझ में नहीं आया कि कहाँ तो कांग्रेसी सरकार जाति-पाँति का झगड़ा उठा देना चाहती है और कहाँ ये महाशय पुनः उसी 'सड़ातन'-धर्म का पोथा खोलने लगे हैं ? अरे, "जाति-पाँति पूछै नहीं कोई—हरि को भजै, सो हरि का होई"—सियावर रामचन्द्र की जै !

फिर जिसे जरा भी अक्ल होगी, वह चमगादड़ की जाति को अवश्य ही समझ जायगा। मगर इन कमअक्लों की बात मत पूछिये। अफसरी करते-करते अक्ल मोटी हो जाती है नऽ ?

लिहाजा मुझे अपनी जाति का खुलासा करना पड़ा—

मैंने कहा—"जी ! मेरी तो कोई खास जाति नहीं है। फिर भी आप समझने के लिये, पशु और पक्षी के बीच का समझ सकते हैं...."

"क्या कहते हो तुम ?....यह पशु और पक्षी क्या बला है ?..."

अजीब आफत थी। अफसरी की कुर्सी पर अकड़कर बैठना तो ये सीख गये, मगर आजाद इण्डिया में इन्हें अब तक हिन्दी के शब्द नहीं आये।

"मेरी जाति का नाम 'लीचड़' है....कीचड़ का भाई...." मैंने एक नई जाति की सृष्टि कर डाली—सोचा लगे हाथों ब्रह्मा की तरह सृष्टिकर्ता ही हो लूँ यद्यपि अपनेराम को चार की जगह केवल एक ही 'थूथुन' यानी मुँह है।

साहब ने कागज पर मेरी जाति लिख ली फिर सर उठाकर कहा—"तुम्हारा पानी चलता है ?"—पूछकर मेरी तरफ अत्यधिक गौर से नजर डालने लगे।

बिस्मिल्लाह ! यह पानी का चलना क्या बला है ? सोचते सोचते अक्ल 'औंड़ी' बोल गई। अजीब समस्या सामने था

गई कि 'लीलत उगिलत पीर'—न बोलते बने न चुप रहते।

आखिर बोला—"साहब ! पानी तो गंगा-जमुना का चलता है। हमारे में पानी नहीं भी चलेगा तो क्या ? अलबत्ता अपनी नाड़ियों में खून जरूर दौड़ता है...."

"चुप रहो !"—साहब क्रोध से फुफकार कर बोले—"तुम्हारा छुआ पानी लोग पीते हैं या नहीं ?....' यानी हम अछूत हैं या नहीं, यही उनके पूछने का मतलब था।

हद हो गई साहब, हद ! दकियानूसी, अन्धेपन की हद हो गई-आप स्वयं देख लें। कहाँ आजाद सरकार का समुद्र जैसा ध्येय और कहाँ इन अफसरों की नाली जैसी छिछली मनोवृत्ति ? ये ऊँच और नीच का भेद-भाव कभी छोड़ थोड़े ही सकेंगे। भाई ! यह हो भी नहीं सकता। आज के अधिकांश अफसर तथा शासन की बागडोर सँभालने वाले, बाभन-ठाकुर के ही घर तो जनमे हैं और लड़कपन में उनका परिपालन भी तो उसी संकीर्ण वातावरण में हुआ हैं, जो शुद्ध 'हिन्दुत्व' से सराबोर है।

तो अपनेराम समझ गये कि पूज्य बापू का रङ्ग इन बेटों पर अब तक नहीं चढ़ा है। कहाँ वे भङ्गी-चमार को भी अपना भाई समझते थे और कहाँ ये 'पानी के चलने' की बात पूछ रहे हैं ?

उत्तर देने में कुछ देर हो गई तो साहब बिगड़े—"जवाब क्यों नहीं देते ? तुम्हारा छुआ पानी लोग पीते हैं या नहीं ?"

अपने राम को अब ताव आ ही गया ! कोई कहाँ तक सँभाले ? कह ही डाला—"जनाब ! मैं कोई पानी पाँड़े नहीं हूँ कि लोगों को 'हिन्दू पानी' बाँटता फिरूँ और देखूँ कि लोग उसे पीते हैं या उगलते हैं...."

"गेट आउट !...." साहब बादल की तरह गड़गड़ा उठे और अपने राम डर से दुम दबाकर बिना पीछे देखे भाग खड़े हुए।

भागता नहीं तो करता भी क्या ?

देखा अपने आजकल का रवैया ?

अस्पृश्यता का जो विष आज हिन्दू समाज के शरीर में चल-फिर रहा है, वह सहज में ही दूर होने वाला नहीं।

आज भारत स्वतन्त्र हो गया है और विधान में यह बात शीशे की तरह स्पष्ट कर दी गई है कि हरिजनों को भी सवर्ण हिन्दुओं के समान अधिकार दिये जायँगे, फिर यह 'पानी चलने' का सवाल क्यों ?

भाई, सुन लिया न आपने ?

पानी भी चलता है—और पत्थर भी चलता है। हिन्दू समाज जिस चीज को न चला दे, थोड़ा है।

फलदर्शिनी !

अपनी यह काशी नगरी भी बड़ी 'शैलानी' है। एक न एक खेल-तमाशे होते ही रहते हैं। अपनी नगरी के 'राँड़-साँड़-सीढ़ी-सन्यासी' लोगों की तो बात ही छोड़िये, खद्दर की सफेदी लिए नेतागण भी बड़े खिलाड़ी हो रहे हैं। बापू को मरे अभी कुछ महीने भी नहीं बीते, जमीन पर चीखता-चिल्लाता हुआ रक्त भी नहीं सूख पाया कि काशी में...हाय री काशी। हाय रे बना-रस ! कहना ही क्या है—"जिसका बना हो रस, वही कहलाया बनारस—स्वर्गीय देवता भी जपें हाय बनारस !"

यों तो काशी में सैर-सपाटे, खेल तमाशे के लिए दालमण्डी, चित्रा-निशात-नावेल्टी, बहनोईनाथ (सारनाथ) आदि जगहें तो थीं ही, अब एक नया स्थान भी खुल गया है—वह है टाउनहाल का 'ब्यूटी-रेस-कोर्स'।

टाउनहाल में आजकल 'फलदर्शिनी' हो रही है। समझे आप, फलदर्शिनी के मतलब—"ददाति टटका फलमिति सः फलदर्शिनी।"

अब भी शायद नहीं समझे आप ! अपनेराम के नये 'कोष' को आप छू भी नहीं सके हैं। अरे साहब ! फलदर्शिनी को आपकी 'टुटही' भाषा में प्रदर्शनी कहते हैं। गये तो होंगे ही आप उसमें संध्या के समय—और शायद रोज वहाँ का चक्कर भी लगाते

हो, फल पाने की आशा में !

उस दिन अपनी चमगादड़िन जी को बेहद 'ताव' आ गया। कहने लगीं—"हमरा के फलदरसनी देखा दऽ।"

चलिये साहब ! ये औरतें तो मरदों की नाक पकड़कर नचाने लगी हैं आजकल। मजाल नहीं कि आप उनकी बात सुनकर अनसुनी कर दें। फिर तो सृष्टि बन्द हो जायगी, अगर इन अलबेलियों ने प्रजनन के विरुद्ध व्यापक हड़ताल कर दी तो।

लाचार हो गया। श्रीमती जी की नकेल पकड़कर हाँक ले चला टाउनहाल की ओर। जगमग-जगमग, लकदक, झकाझक—चमचम—दिन-सा उजाला था वहाँ। घूम-घूमकर खूब दिखाया उन्हें। देखकर घूँघट के भीतर से 'खीस-निपोर' कर बोलीं वे—"हमरा के बड़ नीक लागल ई फलदरसनी हो...."

उस दिन प्रदर्शनी में संयुक्त प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हो रही थी। चमगादड़िन जी ने सुना कि देश के कुछ नेता आये हैं तो पुनः छैला उठीं—"हम तब कमेठी जरूर देखब...."

अरे धत्त तेरे की। 'कमेठी' तो जरूर देखेंगी, मगर पता नहीं कि टिकट के दाम भी देने पड़ेंगे—२५) नहीं तो १०) या दस नहीं तो पाँच रुपये 'टेंट' से खड़खड़ाकर खिसक पड़ेंगे। स्वतन्त्र भारत में यह 'कमेठी' भी रुपया बटोरने का एक साधन हो गई है। जिसके पास धन है, वह देखे यह तमाशा—हम जैसे 'फटेहाल' तो झाँकने भी न पायेंगे। यही है वह वसूल, जिससे आगामी साढ़े बीस साल में भारत की कायापलट हो जायगी। धन को तो सभी महत्व देते हैं, तो क्या हमारी 'कमेठी' न देगी ?

मैं बोला—"देखो श्रीमती ! इस अमेठी-कमेठी का पिण्ड छोड़ो, चलो, अपने घोंसले में चलकर पास-पास सो रहें। यह कमेठी नहीं है, रोजगार का एक ढंग है, नहीं तो प्रदर्शनी में भी कभी कमेठी हुई थी। हमारे नेतागण भी अब अभिनय करने लगे हैं न, तभी तो टिकट लगा है। देख लेना, कुछ दिनों में सिनेमा के

परदे पर हीरो का पार्ट करते दिखाई पड़ेंगे। सुराज तो ले ही लिया है, अब दूसरा काम ही कौन-सा है ?.... चलो, घर चलें ...

चमगादड़िन जी के दिमाग में ये बातें तीर-सी लगीं मगर खुदा खैर करे, वे जाने क्या सोचकर चुपचाप घोंसले में लौट आईं !

साहब ! अब तो प्रदर्शनियों का बोल-बाला है और जनता भी धीरे-धीरे 'प्रदर्शनी-माइण्डेड' होती जा रही है। मेहरारुओं को भी चस्का लग गया है। पहले दस-बीस साल में कहीं फलदर्शन होता था, अब तो अपनी काशी में ही हर साल फलदर्शन होने लगा है। मगर इतने बड़े तमाशे में दो चार त्रुटियां तो रहती ही हैं—जैसे जुआ खेलने के आधुनिक साधन, कुछ बोतलें, कुछ 'छूमछनन'। यही कमियाँ रह जाती हैं। आशा है इनका भी उचित प्रबन्ध किया जायेगा।

इस बार प्रदर्शनी में कहानी सम्मेलन भी हुआ। कवि सम्मेलन भी। पहले सभा-सम्मेलन-कमेटी जनता की भलाई के लिये खुलेआम हुआ करते थे, परन्तु अब इन पर टिकट लगने लगा है। कमाने-खाने के लिये कुछ न कुछ सी-पटाक तो करना ही चाहिये।

हाँ ! तो कहानी सम्मेलन के संयोजक थे कोई 'इन्द्र' भगवान। इन्द्र भगवान को तो सभी जानते होंगे, कम से कम बादलों के रूप मे तो उन्हें सभी ने देखा होगा। पता नहीं कैसे स्वर्ग से खिसककर, भू पर संयोजकी करने चले आये। आजाद भारत के दो खंड देखने की लालसा शायद वह रोक न सके।

कहानी-सम्मेलन के सभापति थे 'बुधुआ की बेटी, को सँवारने-निखारने वाले 'उग्र' जी। बालकों और महिलाओं के लिए टिकट का रेट आधा था और पुरुषों के लिए पूरे से भी दूना। पता नहीं कि 'हिनहिनानेवाले' घोड़ों, बलबलानेवाले' ऊँटों, चींपो-चींपो करने वाले जन्तुओं के लिए टिकट का रेट क्या-था, क्योंकि विज्ञापन में इसका जिक्र नहीं था, परन्तु सुनते हैं कि ये बेचारे भी

सम्मेलन में काफी तादाद में शरीक हुए थे। अपनेराम तो जा भी नहीं सके। सोचा, नोट देकर प्रवेश पत्र खरीदने यानी एक कागज देकर दूसरा कागज लेने से फायदा ही क्या है।

अपनेराम की राय में बालकों और महिलाओं पर जो टिकट लगाया गया, वह उचित नहीं था, क्योंकि सम्मेलन से अच्छो कहानियाँ तो बालक अपनी नानी से भी सुन लेते हैं—और महिलाओं पर तो सभी को 'तरस' खाना चाहिये। परन्तु इन फलदर्शिनी वालों ने 'तरस खाना' सीखा नहीं शायद ! एक बार 'तरस' खा लें तो जिन्दगी भर के लिए भरकम तोंद निकल आवे।

गर्मी हो गई !

जब हमारे यहाँ अंग्रेज शासक थे, तो उन्हें हर साल गर्मी के दिनों में 'गर्मी' हो जाया करती थी और बेचारों को शिमला या नैनीताल भागना पड़ता था। मगर आश्चर्य तो यह है कि बचपन से ही देश की गर्मी-सर्दी-लू-बरसात सहते रहने वाले हमारे वर्तमान शासकों को भी गर्मी होने लगी है और अब शिमला या नैनीताल चार महीनों के लिए 'सरकारी सदर' बने रहते हैं। समझ में नहीं आता साहब ! कि ५०-६० वर्षों से जेल की चक्की पीसते आने वाले नेताओं को यह 'गर्मी' कब से होने लगी ? और क्यों होने लगी ? शायद 'शासकीय कुर्सी' का ताप अधिक हो या फिर अधिकार की 'गर्मी' से 'गर्मी' हो गई हो। अपनेराम के आध पाव के दिमाग में यह बात आती नहीं। भाई ! इस 'गर्मी' की तो एक ही दवा है और वह है 'पेन्सीलीन' का हर तीसरे घण्टे पर इन्जेक्शन—लगातार चार दिनों तक। फिर देखिये ! यह 'गर्मी' दूर होती है या नहीं ?

कलम को जीभ निकली !

बुढ़ाई कसम; बिल्कुल सच बात है, कलम को जीभ निकल

आई और वह बोलने लगी। अगर आपकी जबान ईश्वर न करे कट जाय तो आप कलम की जीभी द्वारा भी उसी प्रकार बोल सकते हैं। विश्वास न हो तो श्री यशपाल को बैरङ्ग पत्र डालकर पूछ लीजिये। मगर याद रखिये—पत्र बैरङ्ग ही भेजियेगा। टिकट लगे पत्रों का उत्तर यशपाल जी देते ही नहीं।

अभी १९ मार्च ४८ को रात पौने आठ बजे आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से बोलते हुए श्री यशपाल ने जोरदार शब्दों में कहा था—"मैं समाज के लिए लिखता हूँ और कलम की नोंक से बोलता हूँ...."

देखा न आपने! मैं झूठ थोड़े ही बोलता हूँ। यशपाल जी हमारे सबसे बड़े गवाह हैं। कैसी 'करकराती' हुई सच्ची बात कही कि अपनेराम तो बस पूछिये मत, एकदम 'मात' हो गये।

मगर एक बात बताऊँ? यशपाल जी से यह सुनकर कि वे कलम की नोंक से बोलते हैं, अपनेराम ने भी सोचा कि देखें, अपनी कलम 'ससुरी' भी कुछ बोल सकती है या केवल लिखना ही भर जानती है। लाख दुलराया, सहलाया परन्तु उनकी चची एक लफ्ज भी जो बोली हो तो मेरी 'बोली' बन्द कर दें आप।

समझ गये न? हमारी-आपकी 'किरिच' की कलम थोड़े ही बोल सकती है-बोल सकती है तो केवल यशपालजी की 'पार्करीय' 'फुहारा कलम।'

भाई! यशपालजी ठहरे 'यश' की नाव पर उड़ने वाले 'पाल' —पुराने 'लिक्खाड़'—समाज के लिये लिखते हैं और कलम की नोंक से बोलते हैं-कौन कर सकता है ऐसा काम? व्यास, वाल्मीकि सभी तो मर चुके—है कोई? मगर एक बात विचारणीय है— यशपाल जी जब कलम की नोंक से बोलते हैं तो जीभ की नोंक से लिखते भी होंगे—वर्ना जरा-सी एक कलम लिखना-पढ़ना यानी 'एक पन्थ दो काज' कैसे कर सकती है?

अपनेराम की राय है कि यशपाल जी की जीभ का 'एक्सरे'

होना चाहिये कि वह ऐसी जीभ है जो बोलने की बजाय लिखती है। हम भी 'पार्कर' वालों को एक ऐसी ही कलम का आर्डर देने वाले हैं, जो लिखने के बदले बोले।

जय कपीश !

जय हनुमान ज्ञान गुण सागर ।

जय कपीश तिहुँ लोक उजागर ॥

यह प्रसिद्ध 'महाकाव्य' हनुमान चालीसा का प्रथम चरण है। श्री कपीश हनुमान जी की स्मृति में श्री कवीश तुलसीदास ने इसे रचा था। बड़ी महिमा है इस 'चारपाई' की। 'भूत-परेत' के 'फेरों' से बचने के लिए इसका दनादन एक सौ पौने आठ बार का पाठ बड़ा फलदाई है—यह है अपने 'खूँटा' काका का मत। आप-का मत चाहे जो हो, अपनेराम तो 'मत-मतान्तर' में ज्यादा नहीं पड़ते....अलबत्ता यह जरूर है कि तुलसीदास को कवीश बनाने में श्री कपीश का बहुत बड़ा हाथ था। तुलसीदास यदि हनुमान जी की पूँछ पकड़ कर न लटके होते तो उन्हें श्रीराम भगवान का भव्य दर्शन कभी न हुआ होता और तुलसीदासइ धर-उधर 'चार-पाई' (चौपाई) बनाते हुए घूमा करते।

तुलसीदास तो पिछले जमाने के कवि थे। जो कुछ लिखते थे, उसके प्रचार का साधन था ही नहीं। न इतने अखबार निकलते थे और न पम्फलेट। मगर आजकल के कवियों की मत पूछिये। एक भी 'चारपाई' किसी ने बनाई नहीं कि सड़ाक से वह किसी नवेली पत्रिका में छपकर चमक उठी, यानी प्रकाशित हो गई। प्रचार का कितना बड़ा साधन है यह ?

एक साधन और है प्रचार का—कवि सम्मेलन। कविता अच्छी हो या न हो—कवि महाशय के गले में मिठास, सूरत में नमकीनी, हाथ की ऊँगलियों में लहर और कमर पर बल देकर थिरकने की ताकत हो तो समा बँध जाय। लोग वाह-वाह चाहे न

कर, मगर सीने पर सेर भर का हाथ रखकर हाय-हाय तो जरूर करने लगेंगे। ऊपर से पैसा भी देंगे। सोचेंगे, 'कोठे' पर न गये कवि सम्मेलन में ही चले आये। मुजरे का मजा तो यहाँ भी है और वहाँ भी....और पैसा भी देना है दोनों ही जगह। फिर 'कोठे' पर जाने में यदि किसी ने देख लिया तो नाक की ठोर एकाध इन्च तो जरूर ही कट जायगी, इसलिए कवि सम्मेलन ही भला है—कोठे वाले मुजरे का आधुनिक, परिष्कृत रूप है न यह ? अपनेराम भी अब कवि होने की सोच रहे हैं और तुलसी की तरह आँखें निकाल कर किसी कपीश की तलाश कर रहे हैं। आपको किसी 'कपि' का पता मालूम हो तो लेडीफोन द्वारा अपनेराम को तुरन्त खबर दें। मगर 'कपि' पूँछदार होना चाहिए, ताकि उसकी पूँछ से लटक कर, यानी कटहल बनकर अपनेराम भी कपीश बन सकें। आजकल विना पूँछ वाले भी बहुतेरे कपि घूमते हैं मगर हमें उनकी कत्तई जरूरत नहीं।

हाँ तो, अपने 'राष्ट्रकवि' के भाई श्री सियारामशरण गुप्त भी कवीश बन गये हैं। किसकी पूँछ से लटककर आप कवि बने यह अभी पता नहीं चला है, फिर भी हिन्दी के सभी 'महान' आपको कवीश ही मानते हैं। श्रद्धेय 'लेट' यानी स्वर्गीय बापू जब अनशन कर रहे थे तो इन टटके कवीशजी ने एक कविता बनाई थी—'बापू का अनशन समाप्त सकुशल हो सत्वर....' इसे आपने बापू की सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा भी था। सुशीला नायर के पत्रानुसार वह कविता बापू को बहुत पसन्द आई और उन्होंने इसके लिए कवीश जी को धन्यवाद भी लिख भेजवाया।

कुछ ही दिन बाद बापू मरे और अखबारी दुनिया में तूफान-सा आ गया। हमारे कवीशजी को प्रचार का यह अच्छा अवसर हाथ लगा। उन्होंने उस कविता को अपने प्रेस में छाप लिया और और एक-एक प्रति सभी पत्रिकाओं में भेज दिया। साथ में सुशीला नायर के पत्र की प्रतिलिपि भी थी।

कुछ सम-पादकों ने तो उसे छापा। सोचा गुप्तजी की (क्षमा कीजिए, कवीशजी की) कविता है—इसे छाप देने से पत्रिका का 'दण्ड' (यानी मानदण्ड) बहुत ऊँचा उठ जायगा और कुछ सम-पादकों ने यह सोचकर कि यह आत्म-प्रचार है, उस कविता को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। चिनगारी सम-पादकों ने न तो छापा और न तो रद्दी की टोकरी में ही फेंका, वरन् इसे हर समय कलेजे से लगाये घूमते रहते हैं और लोगों को दिखाते फिरते हैं कि देखा आपने! आत्म-प्रचार का कितना बड़ा साधन है आजकल के जमाने में।

मगर सच पूछिये तो अपने राम को कपीशों या कवीशों का यह रवैया जरा भी पसन्द नहीं। कुछ कवि या सुलेखक एक ही पत्रिका में अपनी रचना छपाकर सन्तुष्ट नहीं होते, चाहते हैं कि सभी पत्रिकाओं में वह छप जाय और हो सके तो सभी से पुरस्कार (ईनाम नहीं ठनठनगोपाल) ऐंठा जाय।

खाल खींच ली गई!

राम-राम! बड़ी आफत है। ऊपर की खाल खींच ली गई, अब अन्दर के मांस के लोथड़े देख लीजिए—वीभत्स!

कभी आपने भी अपने शरीर की खाल खिचवाई है?....नहीं! तो ठीक है। खुदा न करे कभी आपको यह 'खुश-नसीबी' हासिल हो।

बेचारे समाजवादी 'पटरी' न खाने के कारण कांग्रेस से अलग हो गये। कांग्रेस में रहते तो 'वोट' के संग्राम में जीतने पर भी विजय कांग्रेस की ही कही जाती। अब जो अलग हो गये हैं, यानी नौ कनौजिया साढ़े तेरह चूल्हे बना लिए हैं तो 'वोटीय' नोंक-झोंक में जीतने पर रंग-बिरंगी खिचड़ी पकेगी। क्या करे बेचारी कांग्रेस? उसकी तो खाल ही खींच ली गई। वह समाज-वादियों को 'पटरी' खिलाना चाहती थी परन्तु भीषण 'पटरी'

देखकर समाजवादी भड़क कर मील भर दूर जा पड़े। आप ही बताइये, पटरी भी कोई खा सकता है ? 'देखै के गौरैया—लीलैं बर के गोदा' वाला मसला समाजवादियों को पसन्द नहीं।

भाई ! अब तो सुराज हो गया है ! अब एकता की जरूरत है ? एक में रहने की तो तब जरूरत थी, जब गोरी कुतियाँ खाँव-खाँव करके काट खाने दौड़ती थी ! अब वही 'खाँव-खाँव' 'भों-भों' वाला हिसाब हमारी पार्टियाँ भी सीख गई हैं और अपने हाथ-पैर अलग-अलग पसार कर एक दूसरे पर 'भूँकायमान' हो रही हैं। कुतियों का और काम ही क्या है !

अपने राम की राय में कांग्रेस और समाजवादियों का अलग हो जाना ठीक उस घटना की तरह है, जैसे किसी बाहरी कुत्ते को देखकर स्थायी 'कूकुर' आपस में में मिलकर उस पर हवाई हमला बोल देते हैं और उसे भगाकर, विजय का 'ताव' रोक न सकने के कारण आपस में ही 'उठा-पटकी' करने लगते हैं। कितनी लज्जा की बात है यह ? अपने राम न तो 'खांग्रेसी' (खांग्रेसी माने वह जन्तु, जिसे दिखाने के खांग बड़े-बड़े और खाने के दाँत छोटे-छोटे होते हैं) ही हैं और न तो 'खम्माचवादी (अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग के समर्थक) ही।

समाजवादी हम जरूर हैं और काशी के साप्ताहिक 'समाज' का हर हफ्ते एक लाख आठ बार परायण उड़ते-उड़ते कर लिया करते हैं।

गोरे-गोरे हाथों में बरछी !

कुछ सुना आपदे ? काश्मीर में आजकल आग लगी है। वह काश्मीर, जहाँ केशर की क्यारियों के बीच मादक सौन्दर्य खिलते थे, जहाँ जाकर लोग जीते-जी 'स्वर्ग धाम' के दर्शन कर आते थे। अपनी खूबसूरती, अपने चुलबुलेपन के लिए मशहूर काश्मीर !

सो वहाँ अपने मियाँ 'जिन्ना' की वजह से आग धधक रही

...क्या धधक रही है, बर्छी-गोलियाँ चल रही हैं, माताओं बहनों से वासना की आग बुझाई जा रही है।

...घमासान लड़ाई हो रही है। बेचारे काश्मीरी तो लड़ रहे हैं, अब 'काश्मीरिनियों' को भी अपने नाजुक गोरे-गोरे हाथों हथियार उठाना पड़ रहा है। क्या करें, अपनी लज्जा में बर्छी ...जाने से तो दूसरे की छाती में बर्छी भोंकना कहीं ज्यादा अच्छा है। औरतों का यह हथियार उठाना देखकर अपनेराम को एक शेर याद आ जाता है—

तेगो तबर को लेकर तैयार तो हुए हो।

झुक जायेंगी तुम्हारी नाजुक कलाइयाँ हैं॥

अपनेराम तो यही कहेंगे कि ऐ नामरद मर्दो! उन गोरे-गोरे हाथों में तीखी बर्छियाँ देखकर अपना सीना सपाटकर दो और भुंक जाने दो बर्छियाँ—बड़ा मजा आयेगा!

मोरी बँसिया चुराई!

अपनेराम के घोंसले की बगल में ही एक नारायण काका रहते हैं। राम-कृष्ण के परम भक्त हैं। सुबह-सुबह कीर्तन जोरों से करते हैं और इसके बाद दिन भर तक 'नवेलियों' से आँख लड़ाया करते हैं। उमर अभी केवल एक कम साठ साल की है, सो अभी 'पाठा' नहीं हो पाये हैं। एक साल बाद उन्हें यह डिग्री मिल जायगी।

अपने नारायन काका अक्सर यह भजन गाते हैं :—

राधा ने मोरि बँसिया चुराई,

अब ना जीबो री माई।

पड़ोस में ही धोबी का एक शरारती लड़का है। काका को भजन गाते सुनकर वह भी दौड़ा आता है और हाथ मटकाकर गाने लगता है।

राधा ने मोरी गधिया चुराई,

अब ना चींपो री माई।

सुनकर नारायण काका बिदक जाते हैं । परन्तु लड़कों के भोलेपन को कोई क्या कहे ?

करौंदा की छैंये-छैंये !

अब तो ऐसा जमाना आ गया है कि सभी लोग शासन का 'हथियार' अपने हाथों में पकड़कर सहलाने को उत्सुक हैं । बड़े-बड़े पदों की बात छोड़िये, 'मुसपिल्टी' (म्युनिसिपैल्टी) और 'बिस-धिसबोटी' (डिस्ट्रिक्ट बोर्डीय) चुनाव में ही काफी तहलका मचा हुआ है ।

जो कभी कांग्रेस की पूँछ में 'चकल्लनि' का तेल लगाकर सह-लाये भी नहीं, वे ही आज झाँझर खद्दर के कपड़े पहन और बापू की टोपी लगाकर १०६ डिग्री तापमान के कांग्रेस के टिकट पर मेम्बरी के लिये उठ खड़े हुए हैं ।

अपने ही भाई बिराहर हैं ये सब । चमगादड़ की तरह जिसकी जीत देखी, उसी का 'चाटने' लगे—पैर ! 'टट्टी की ओट शिकार' यानी 'करौंदा की छैंये-छैंये—मुँह चुमौवल' इसी को कहते हैं ।

गरीबों को देने के लिए ये एक पैसा भी नहीं निकाल सकते मगर वोट 'डलवाने' के लिए चिथरू चमार तक के पैर पर थूककर चाट सकते हैं । दस बीस हजार इस 'चटौवल' में खर्च कर देना इनके बायें हाथ का खेल है । अपनेराम ने बहुतेरे कांग्रेसियों को देखा है, जो मेम्बरी पाकर सिवाय कुर्सी की धज्जी उखाड़ने के और कुछ नहीं 'उखाड़' सके तो इन नकली कांग्रेसियों से क्या आशा की जाय, जिनके नश-नश में ब्लैक मारकेटिंग की बदबू भरी हुई है ।

इस विषय की 'टटकी' घटना आपको सुनाता हूँ । खुदा के फजल से अपनेराम का नाम भी 'वोटरों' की लिस्ट में दर्ज है । महीनों पहले से अपने पुट्ठों में तेल लगाने के लिए कांग्रेसियों, समाजवादियों तथा स्वतन्त्ररूप से खड़े होने वालों के दबाव पड़ने लगे । अपनी छटाँक भर की जान अजीब तरह से 'चपलायमान'

होने लगी, किसे वोट दें और किसे न दें—सभी तो 'अपने' ही हैं, अपने ही बनकर आते हैं।

"देखिये! कांग्रेस ने देश को आजाद कराया है—आपका वोट हमें ही मिलना चाहिये'—कांग्रेजी सज्जन की सिफारिश थी?

'भई! इस आजादी से तो अपनेराम गैरआजाद ही भले थे' —हमने कहा—'आप लोगों ने मन्दिर-प्रवेश बिल पास कर दिया और चमार-सियार सभी मन्दिरों में घुसने लगे। घुरहू पण्डित कहते है कि इन कांग्रेसियों ने देश का नाश कर दिया। इतना अत्याचार तो गोरी बीबी भी नहीं करती थी....

और आपने तलाक बिल पास कर किया'—अपनेराम कहते गये—'अब हर समय चमगादडिन जी के आगे डर के मारे उँकडू होना पड़ता है....आपने पाकिस्तान स्वीकार कर लिया। घुरहू पण्डित कहते हैं कि जब से पाकिस्तान बना तब से उनकी चहेती रसीदा बानू ने उनसे बोलना छोड़ दिया। कहने लगी—"तुम तो हिन्दू हो...."

"और ...."

"और क्या?"—अपनेराम ताव में आकर बोले—'आज हैदराबाद में जो कुछ हो रहा है, उसे देखते हुए भी आप लोग कान में तेल डालकर बैठे हैं....'

"भाई! राजनीति में सब कुछ समझ-बूझकर करना पड़ता है नऽ?"

"तो अपनेराम भी समझ-बूझकर ही वोट डालेंगे....या मुष्टिका उष्ण करने को कुछ दीजिए तो...."

"...." वे कुछ न समझे। 'ब्लैक' आँखों से अपनी ओर घूरते रहे।

"कुछ मुठ्ठी गरम करने के लिए साहब! समझे! बगैर ठन-ठन गोपाल के अपनेराम पिघलते नहीं!...."

वे सज्जन एकाएक बिदके, टट्टू की तरह दोनों टाँगें ऊपर उठा

कर खड़े हो गये। बोले—"आप खद्दर के कपड़े पहनते हैं—आपके मुँह से ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं...."

"भाई साहब! खद्दर के कपड़ों की तो मिट्टी पलीत हो रही है आजकल! क्या आप नहीं देखते, खद्दर की चद्दर की ओट में क्या-क्या अनाचार नहीं हुए या नहीं हो रहे हैं...."

वे सज्जन, इक्केवान का सोटा खाकर अड़ियल टट्टू की तरह तुरन्त भाग गये। दो-चार दिन बीते। समाजवादी आये। अपनेराम ने उनके सामने कड़ाही जैसी मुठ्ठी फैला दी। बोला—"कुछ, दीजिए, तब...."

"हें-हें! देखिए साहब! यह बात तो ठीक नहीं....मगर...."

"ठीक हो चाहे न हो—अपनेराम का वोट तो सौ से कम में बिकेगा नहीं...."

"सौ तो बहुत हैं पचास!...."

"निन्यानबे नहीं—पूरे सौ लूँगा...."

"अच्छा पचहत्तर ले लीजिए!...."

"वही सही, लाइये!...."

पचहत्तर रुपये टेंट में रख लिया मैंने। ये सज्जन कभी के समाजवादी नहीं थे, मगर अब तो हो गये थे और मजदूरों तथा किसानों को ऊपर उठाने का बीड़ा, तम्बोली के यहाँ से दो पैसे में लेकर खा चुके थे।

इसके बाद आये स्वतन्त्र रूप में खड़े होने वाले।

उनसे भी तीन-चार सौ की आमदनी हो ही गई।

वोट के दिन अपनेराम बढ़िया कार में चढ़कर गये। पूड़ी, कचौड़ी तथा मिठाई पेट भर खाकर और चुपके से कांग्रेस को वोट देकर चले आये!....

ऊँट बलबलाया!

हैदराबाद की रियासत जन्नते-ज़मीं है। वहाँ क्या-क्या है, यह

मत पूछिये—पूछिये, वहाँ क्या-क्या नहीं हैं ? तो अपनेराम मदंन झाड़कर यही उत्तर देंगे कि भाईजान वहाँ सभी कु है—हुस्नो-जवानी, बचपन-बुढ़ापा, दुख-सुख, रोना-हँसना, ऊँ-ऊँ-हीं-हीं तथा तीतर-बटेर, मुर्गी-बुलबुल, घोड़े-गदहे, ऊँट वगैरह-वगैरह।

ऊँटों की गिनती यों तो कुछ कम है परन्तु जो हैं, वे सभी पहाड़ी ताड़ जैसे ऊँचे और जोर-शोर से 'गलाफाड़' गलगलाने वाले हैं। एक डबल 'कूबड़ीय' ऊँट भी है। नाम है सैयद कासिम रजबी। पूरा कटखना है यह।

अभी हाल में ही इसे जोरों से 'बलबलास' लगी तो इसने अठारह हाथ की गर्दन ऊपर आसमान की ओर उठाकर कहा था —"हम हैदराबाद में उत्तरदायी सरकार नहीं बनने देंगे...."

"खूब ! सदके इस 'बलबलास' के ! हैदराबाद तो आपके बाप की मालियत है नऽसो दूसरे का अधिकार ही क्या ? ठीक ही तो है, उत्तरदायी सरकार नहीं बनने देंगे मगर माँ-बहनों की अस्मत लूटने का 'सेन्टर' जरूर बनने देंगे। खैर ! अपना-अपना ख्याल है। ऊँटों का क्या ठिकाना ? चाहे जिस करवट 'उलटने' लगे।

इसी 'बलबलास' के सिलसिले में यह भयानक ऊँट कहता है—"अगर हम पर आर्थिक प्रतिबन्ध लागू किया गया तो हम उसका सामना करेंगे। विदेशी माल (यानी भारतीय माल) का प्रयोग लोग बन्द कर दें और राज्य में जो कुछ होता है, उसी पर सन्तोष करें (राज्य में शकरकन्द भी तो होता है। भूनने के लिए लकड़ी न मिले तो कच्चा खाना ज्यादा फायदेमन्द होगा) यदि पेट्रोल का आना बन्द कर दिया गया तो हमें देशी यातायात के साधनों को अपनाना चाहिये।"

देशी यातायात के साधनों में सबसे अच्छी ऊँट-गाड़ी होगी, यदि उनमें रजबी साहब 'जोत' दिये जायँ। बच्चों के लिए तो किसी आड़ी-गाड़ी की जरूरत नहीं। वे तो गुल्ली-डण्डा खेलने वाले डण्डे पर ही चढ़कर, टिकटिकाते हुए 'काले-कोस' पहुँच जायेंगे।

कविता सग्गड़ !

आजकल मार्केट में कविता-सग्गड़ों की भीड़ उतरा पड़ी है। हर सग्गड़ पर ढेर की ढेर कविताओं का बोझ देख लीजिए। सग्गड़ चलाते-चलाते बेचारे प्रकाशक भी परेशान हो उठते हैं फिर भी जब सग्गड़ चलता नहीं तो उन्हें रुआँस छूटने लगती है।

हाँ तो, एक नवीन कविता सग्गड़ (संग्रह) मार्केट में उतरने वाला है। यह सग्गड़ है श्री अर्जुन चौबे काश्यप का....प्यार भरा नाम है 'दो क्षण'। इस इश्यिकान 'दो क्षण' को श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय ने सँभाला है। अपनेराम के स्पेशल दूत ने खबर दी है कि पाण्डेय जी ने एक स्थान पर 'चिल्हकी' की जगह 'चिहुँकी' बना दिया था, चौबेजी सड़ाक से धोती से बाहर हो गये थे। मगर किसी तरह मामला शांत हो गया।

खुदा की खादी !

भाई ! मियाँ टिन्ना की बादशाहत-पाकिस्तान में आजकल 'कपड़ों' की बेहद कमी हो गई है और लोगों को 'कपड़े' से 'होने' में बड़ी मुश्किलाहट पड़ रही है। शो मियाँ टिन्ना और मियाँ लैकत-अली ने अपने देश में 'खादी' आन्दोलन चलाया है। धड़ाधड़ करघे बन रहे हैं। लोग कसम खा रहे हैं--कसम खुदा की, अब खादी ही पहनेंगे। अपनेराम को पता चला है कि खुदा मियाँ भी अपने हूरों और गिलमाओं के लिए पाकिस्तान से खादी का एक बहुत बड़ा पार्सल मँगवाने वाले हैं, जिसे लेकर खुद मियाँ टिन्ना खुदा की जन्नत में जायँगे....सैर ही सही !

इण्डिया में भी कपड़ों की कमी है ही। अपनेराम की नेक सलाह है कि लोग घर के अन्दर तो दिगम्बरी वेश धारण कर लें और मार्केट में निकलें तो 'संसार', 'आज' या 'सन्मार्ग' को आगे लटका लें। बड़ा सुभीता रहेगा। लोग अखबार भी पढ़ेंगे और तन भी ढँका रहेगा।

काहे मारे नैना बान !

हमारी सरकार अभी १० महीने पहले 'गौना' कर लाई हुई नई दुलहिन है न। जरा रसीली तबीयत की है, सो घूँघट की ओट से 'नैना-बान' मारती है। अभी हाल ही में एक बुढ़ऊ बाबा 'सरकार' के इस 'बान' की चपेट में आ गये। सरकार के 'देवर' थे न, सो ११॥ महीने तक बेचारे हवालात में अपनी 'डार्लिंग' का नाम जपते रहे, परन्तु नवेली सरकार ने उन्हें पूछा तक नहीं और 'फागुन' बीत जाने पर उसने अपने इन बुढ़ऊ 'देवर' को बिना कुछ दिए-लिए निकाल बाहर किया।

अपनेराम 'सरकार' की इस 'सरकारी चाल' पर बधाई देते हैं। पड़ा रहे आँखों पर परदा, बना रहे यह अलबेला घूँघट—फिर तो चलते रहें 'नैनाबान' और लोग चिल्लाते-तड़पते गाते रहें—'काहे मारे नैना बान साँवरी !....'

यह चोरी !

सेठ हरगोविन्द की 'हौली' में मतवालों की बड़ी भीड़ जुटने लगी है आजकल। एक दिन अपनेराम भी उड़ते-उड़ते पहुँच ही गये और दो आने का एक पैग छानकर तथा छः रुपये की एक बोतल 'घरेलू' इस्तेमाल के लिए लेकर एक कोने में चुपचाप ऊँकड़ूँ बैठ गये।

दो मतवाले बातचीत कर रहे थे। यों—'अब्बाजी !....'

"हाँ, बेटे !"

"१४ मई को रात के दस बजे श्रद्धेय सम्पूर्णानन्दजी कहाँ थे ?"

"बनारस...."

"उसी दिन १० बजे रात के लगभग, जब काशी के दृढ़-कठोर कांग्रेसकर्मी श्री छेदीलाल पर छूरे का घातक वार हुआ, तब सम्पूर्णानन्द जी कहाँ रहे होंगे ?"

"समाचार के अनुसार, वे उस समय बजड़े में, रसकेलि में, प्रबादपरिखद में, चापलूसों और रसगुल्लों के भीड़-भड़क्के में गङ्गा-लाभ कर रहे थे...."

"छेदीलालजी और सम्पूर्णानन्दजी, दोनों कांग्रेसी—मगर एक छूरा खाता है और दूसरा रसगुल्ले—ऐसा क्यों अब्बाजी ?"

"सो तो मुझे मालूम नहीं बेटे !...."

अपनेराम को इस बातचीत में बड़ा मजा आया। प्रसन्नता हुई यह देखकर कि अब 'मतवाले' भी जबान सँभाल कर बुद्धिमानी की बातें करने लगे हैं। इस चटपटी चीज को अपनेराम वहीं नोट कर लेना चाहते थे परन्तु चोरी पकड़े जाने के भय से नहीं कर सके। घर आकर नोट कर लिया तो शब्दों में कुछ हेरफेर हो ही गया।

सैंया भये कोतवाल !

आज मोरा मन नाच रहा, नाच रहा, नाच रहा रे—
मोरा दिल नाच रहा रे, मोरा घर नाच रहा रे।

आप पूछेंगे क्यों ? तो अपनेराम चटककर, मटककर, कमर हिलाकर 'छूम-छननन' करने लगेंगे और मुँह गलगला कर गाने लगेंगे—'मोरे सैंया भये कोतवाल अब डर ठेंगे का'

सुना आपने नऽ ! मेरे सैंया, मेरे राजा, मेरे बालम, मेरे बाबुल आज कोतवाल बनि गये। सच्चीं हो, पूरे कोतवाल। 'डिल्ली' के थाने में गद्दी पायेन हैं। अब तो एकदम अपना राज यानी सुर्र-सुर्र-सुराज हो गया, चाहे जो करो सब माफ—माशूक के सात खून भी माफ !

भाई ! डिल्ली में कोतवाली पाना और 'होल इण्डिया' पर 'कोतवलई' यानी शासन करना कोई हँसी खेल या गोलगप्पा-रसगुल्ला नहीं है कि सटाक से गले की गुफा में सटका दिया। वह तो लोहे का मूसल है। वज्र का हाथ जिसका हो, वही उसे पकड़ सकता है। अपने सैंया जी पूरे वही हैं, तभी तो देश के लीडरों

ने उन्हें कोतवाल बनाया। पुराने कोतवाल लार्ड 'माउन्त बैतन' काफी गोरे थे, अतः इण्डिया के कालों ने उन्हें 'डायरेक्ट' लन्दन खदेड़ दिया।

लन्दन को खदेड़ते समय इण्डिया वालों ने बड़ी सभ्यता दिखाई और उनका वह स्वागत किया कि बस, अल्लाह पनाह! दनादन पौने इकतीस तोपों की सलामी दी गई। पौने इकतीस इसलिये कि तीस तोपें तो बड़े जोर-शोर के साथ धमाके से छूटीं, मगर इकतीसवीं तोप जोर कम लगने के कारण केवल 'फुसफुसा' कर रह गई। सरकार को चाहिये था कि वह तोप 'दागने' वालों को रात में भरपूर खाना देती, ताकि सबेरे वे धड़ाक्-धड़ाक् तोप दाग सकते। विदाई के समय श्री माउन्त बैतन जी ने सम्राटे बरतानिया की ओर से हिन्द की जनता और सरकार को १० सोने की तश्तरियाँ भेंट कीं। अपनेराम की राय में अगर १० तश्तरियों के साथ १० लोटे भी भेंट किये जाते तो अति अच्छा होता। खाने के लिये तश्तरियाँ और पखाने के लिये लोटे-दोनों निहायत जरूरी हैं।

खैर! माउन्त बैतन साहब तो चले गये और अब चक्रवर्ती राजगोपालचारी साहब 'बड़के लाट' बने हैं। दिल्ली दरबार में इन्हें भी ३१ तोपों की सलामी दी गई। सुना है कि राजाजी का 'सींकिया' शरीर धमाके से काँपने लगा था और उनकी आँख पर लगा हुआ काला 'चसमा' नाक पर से खिसककर उनकी गोद में आ गिरा था।

२१ जून ४८ को १०॥ बजे चक्रवर्ती साहब को 'लाट साहबी' की शपथ ग्रहण कराई गई, विशुद्ध रङ्गरेजी भाखा में। ग्रहण करते हुए चक्रवर्ती जी ने कहा—"मैं चक्रवर्ती राजगोपालचारी शपथ ग्रहण करता हूँ कि मैं ब्रिटिश सम्राट के प्रति पूर्णरूप से बफादार रहूँगा।"

तो भई! अभी तक केवल 'सवा छटाँक' भर का सुराज हुआ है। सोलह छटाँक का सुराज होने में अभी कुछ देर है क

सम्राट तो अभी वही छट्ठम जार्ज ही हैं।

खैर! अब तो अपने सैयाँ चक्रवर्ती के साथ लाट भी हो गये। देखें, वे दिल्ली की गद्दी पर बैठकर किस तरह से कोतवाली करते हैं। अपनेराम ने अक्सर यह देखा है कि ऊँची कुर्सी पर बैठकर हमारे लीदरान जनता से किये गये वे मीठे-मीठे वादे एकदम से भूल जाते हैं। देखें—अपने सैंया चक्रवर्ती साहब किस-किस करवट बैठते हैं। इनसे तो अपनेराम को बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं। ये दृढ़ कांग्रेसी हैं। यह दूसरी बात है कि सन् ४२ में अन्य नेताओं की तरह दो-चार महीनों के लिये जेल न गये हों—परन्तु नेता तो हैं ही, ठीक अपनेराम के नाम की तरह।

ये पहले हिन्दुस्तानी हैं जिन्हें गवर्नर जनरल का पद प्रदान किया गया है। अतः अपने राम आशीर्वाद देते हैं कि अपने सैंया का यह 'पद' पाद प्रहार खाकर भी खसके नहीं, हिले-डुले नहीं। इसके बाद तो 'होईहैं वही जो राम रचि राखा!'—अपनेराम तो इस विचार के हैं कि 'कोउ नृप होई हमें का हानी!' हम तो चमगादड़ के चमगादड़ ही रहेंगे।

हरिजन और ब्राह्मण!

घोर 'कलऊ' आ गया है। बड़ी आफत है। दरभङ्गा के तंचोभ बस्ती से एक अनाचार की खबर आई है। अछूतों और ब्राह्मणों ने एक घाट पानी पिया। डूब मरने की बात है नऽ! कहाँ हरिजन और कहाँ ब्रह्मजन—और एक ही घाट, एक ही कुआँ, एक ही कमण्डल! अपनेराम चुल्लु भर पानी खोज रहे हैं प्राणान्त करने के लिए, परन्तु कहीं मिलता ही नहीं।

चलिए, छुट्टी हुई। हरि और ब्रह्मा एक हो गये और उनके 'जन' दनादन फूलें-फलें—और चाहिये ही क्या?

यह जमाना जो न करा दे थोड़ा है!

हिमालय डोला !

हैदराबाद में होते हुए अनाचार की लीला से हम-आप जैसे चुकन्दर तो जलभुन कर 'भुरता' बन ही गये थे, अब पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे हिमालय का भी आसन डगमग-डगमग होने लगा है। अभी हाल ही में उन्होंने दिल्ली में पत्रकारों के बीच सिंह गर्जना की थी—"हैदराबाद कदापि स्वतन्त्र नहीं रहने पायेगा। चाहे जैसे हो, उसे हम हिन्दू यूनियन में मिलाकर ही दम लेंगे।"

देखा आपने ? इसे कहते हैं 'ताव' का चढ़ना—बेचारे वजीरे-आजम कब तक बरदाश्त करते ? सहन-शक्ति की भी एक सीमा होती है। ब हिमालय डोला है, देखें क्या रंग लाता है। यह सीधी-सी बात है कि गरजनेवाले बादल जब तक मूसलाधार बरसते नहीं तब तक लोगों को उनके 'पानी' का विश्वास नहीं आता। हम अपने वजीरे-आजम जी से प्रार्थना करेंगे कि वे गरजने के बजाय बरसें-धार-धार मूसलाधार ! और हैदराबाद घुटने टेककर खीस न निपोर दे तो अपनेराम का नाम श्री चमगादड़ नहीं।

अपनेराम को यह देखकर रोना छूटता है कि भारत के दो ही नहीं, वरन् तीन खण्ड हो जाना चाहते हैं, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और हैदरिस्तान यानी हैदराबाद। हैदराबाद जैसी लिल्ली घोड़ी भी हिनहिनाने लगी, यह देखकर ताज्जुब होता है। क्या करें भाई जान ! सुराज का जमाना है। चाहे जिसे बिल्ली बना दे, चाहे जिसे शेर !

दस रुपये में एक !

लीजिये ! लूटिये ! धड़ाधड़ बिक रहा है, दस रुपये में एक, पाँच रुपये में आधा। आप पूछेंगे क्या ? तो अपनेराम तपाक से कहेंगे चुम्बन ! मीठा-मीठा, मादक, जवान !

समाचार बड़ा उत्तेजक है, जैसा कि अपनेराम ने सुना है। देख नहीं सका, क्योंकि दूर देश की बातों को देखने के लिए दस हाथ लम्बा टेलीस्कोप चाहिए। अपने दूत ने बड़ी चटपटी खबर भेजी है--किसी शहर में (माफ फरमाइये, मैं शहर का नाम नहीं बता सकता) किसी सभा की एक जवान (और खूबसूरत भी) कार्यकर्ता सरे बाजार चन्दा वसूल कर रही थी। लड़कियाँ, सो भी जवान, खूबसूरत, किस खूबसूरती के साथ चन्दा उगाहने का काम कर सकती हैं, इस बात का यह घटना दनदनाता प्रमाण है।

हाँ! तो बाजारू लोग बड़े शौक-तपाक से चन्दा दे रहे थे। इतने में ही एक जवान साहब तशरीफ लाये। सामने हाथ फैलाये खड़ी हुई जवान खूबसूरती को देखा तो क्या फरमाते हैं-'एक चुम्बन पर तुम्हें दस रुपये मिल सकते हैं...."

कार्यकर्ता को तो चन्दा वसूल करना था, चाहे जैसे हो। उसने युवक की माँग मंजूर कर ली। सरेआम चुम्बन का दान दिया और दस रुपये झोली में रखकर 'यह गई-वह गई' हो गई।

लोग हक्के-बक्के से खड़े देखते ही रह गये सुराज के इस जमाने को। मगर अभी तक इस समाचार की पुष्टि नहीं हुई है। सुनी हुई बात है।

बाल सफा!

अपनेरात सतयुग से ही धरमपरायण रहे हैं। गङ्गा जी की गोद में रोज सुबह एक बार डुबकी लगाये बगैर दिन भर शरीर दाद की तरह खुजलाता रहता है। इस आदत से अपनेराम और अपनेराम की 'दुलहिन' जी भी बेतरह परेशान हैं। कभी-कभी जब चमगादड़िन जी दो साल के बच्चे की तरह 'छेला' जाती हैं, मुझे गंगा जी जाने नहीं देतीं, तो दिन में शरीर की चमड़ी पर खुजली उठते ही अपनेराम उन्हें खराखर खुजलाने का आर्डर दे

देते हैं। वे बेचारी जब नाखून से खुजलाते-खुजलाते थक जाती हैं, तो रसोईघर से गोंइठा (गोबर का जलावन) उठा लाती हैं और उसी से खूब खरखराती हैं।

गङ्गा जी के किनारे अपनेराम नहाते भी हैं और सेंकते भी हैं। आँख सेंकना अपने को बेहद पसन्द है। अपने शहर में जनाना-मर्दाना घाट एक ही में है। सो रङ्ग-बिरङ्गी जनानी सूरतें, पाँच गज की साड़ी और छटाँक भर का जम्फर उतार कर, नहाती हुई दिखाई पड़ती हैं। घर के परदे में घूँघट की ओट देकर फुसफुसाने से लेकर आसमान तक मुलाहजा फरमा लीजिये। भाई, गङ्गा जी का घाट है—धरम का अस्थान ..सो इसकी महिमा अपार है।

एक दिन एक घटना बडी मजेदार घट ई। अपनेराम कमर भर पानी में भींगे खड़े हुए सूर्यनारायण की ओर मुँह किये 'बकुलिया' ध्यान लगाये थे। इतने में छपाक की आवाज हुई। अपनेराम छपछपाहट से डरते नहीं, परन्तु मगरमच्छ का ख्याल कर तनिक सावधान हो आँख खोल देनी पड़ी। देखा एकदम बगल में हाथ भर पानी के नीचे कोई सफेद चीज तैर रही थी। वह चीज पानी के ऊपर आई तो जनाना 'झोंटा' दीख पड़ा और झोंटे के अन्दर से एक बड़ा ही सलोना, मक्खन की तरह सफेद चेहरा नजर अया। तबीयत को जुकाम होने लगा। हम लोग एक सही 'एक बटा सौ' सेकेण्ड तक एक दूसरे को निरखते रहे, फिर दोनों ने साथ ही डुबकी लगाई। देखिये, पानी के अन्दर ही अन्दर हम दोनों के मुँह आपस में टकरा गये। अपनेराम ने डर कर भड़ाक् से अपना सर पानी के ऊपर निकाल लिया, यह सोचकर कि यह जलधर हमें लील न जाय।

तो पानी के नीचे की यह घटना भी खूब रही। एक दूसरे दिन की बात है, बहुत दिन पहले के अपने एक दोस्त पानी के नीचे मिल गये। हमने सोचा कोई जनाना जलधर होगा, सो तपाक से

मुँह से मुँह भिड़ा दिया। अरे साहब! पूछिये मत। पानी के बाहर सर निकालते ही वह तमाचा लगा कि आँखें अन्धी होते-होते बचीं। देखा तो अपने पुलिङ्ग मित्रजी थे। मुझे देखकर बोले—"अरे यार तुम ?.... उन्होंने मुझे इस तरह बदन से चिपका लिया कि पास ही स्नान करती हुई षोडश वर्षीया महोदया का सीना भाथी की तरह ऊपर-नीचे करने लगा।

बहुत दिनों पर भेंट हुई थी, सो पानी में ही खड़े-खड़े हम लोग सतयुग से लेकर कलयुग तक की गाथा कहने लगे। इन मित्र जी का नाम तो सम्पत था, परन्तु हम उन्हें 'चम्पत' कह कर पुकारते थे। सन् ३६ के लगभग, जेब काटने के जुर्म में, जेलखाने की मेहमानी कर आये थे। सन् ३७ के बीच में आप मँगरी चमाइन के साथ रात में पकड़ा गये थे, सो चार महीने की और मेहमानी कर आये। जेल से आने पर आप पुलिस की दलाली करने लगे। सोचा, इन कम्बख्तों को मिला के रखना चाहिये। सन् ४२ में कोतवाल से कहकर आप पुनः जेल चले गयेत ाकि देशभक्तों में आप की भी एक सीट स्वर्ग में रिजर्व हो जाय। अब तो ये पूरे कांग्रेसी हैं। कांग्रेसी सीट से शहर के एक हलके के म्युनिसिपल मेम्बर भी हो गये हैं।

हाल-चाल पूछ लेने के बाद बोले—"साबुन लाये हो ?"

मैंने कहा—"हाँ...."

"और तेल ?....

"तेल भी....एकदम सच्चा कन्नौजिया तिल-रोगन !"

मित्र भी चौंके। पूछा—"तिल-रोगन क्या ?"

"अजी तिल-तैल ! अब समझे ?"

मित्र जी ने इत्मीनान के साथ बीस आने की पीयर्स सोप का 'तीन बटा चार' भाग अपने शरीर पर रगड़ा और तिल-रोगन की छटंकी शीशी की शीशी ही सुखा दिया सर के झोंटे में।

अपनेराम ने सोचा, पुराने मित्र हैं, कोई बात नहीं—थोड़ा घाटा ही सही। मगर, साहब, उस दिन के बाद तो वे प्रतिदिन

मिलने लगे और पीयर्स-सोप तथा तिल-रोगन धड़ल्ले के साथ इस्ते-माल करने लगे। अपने तो गरीब आदमी ठहरे। यह घाटा बड़ा 'अखराऊ' हो गया। उधर चमगादड़िन जी अलग से भुनभुनाती—'रोज इन्हें साबुन और तेल घटा ही रहता है....कल वह साबुन दूँगी कि तुम भी याद करोगे?....''

दूसरे दिन चमगादड़िन जी से साबुन और तेल माँग कर घाट पर आया। मित्र जी भी मिल ही गये। हम तो इधर कमखर्ची के लिये साबुन लगाते ही नहीं थे, मगर लाते जरूर थे। एक दिन नहीं लाये, तो मित्र जी से ताना कसा—''खर्च से घबड़ा गये क्या? जरा-सा साबुन-तेल देते में मरे जाते हो?''

तो साहब रोज की तरह उस दिन भी मित्र जी ने 'बेत-कल्लुफी' के साथ साबुन उठाया और किनारे बैठकर बदन पर रग-ड़ने लगे। ज्यों-ज्यों रगड़ते जाते थे, त्यों-त्यों अपनेराम को बेहद ताव चढ़ता आ रहा था। मगर वे हजरत तो मुफ्त का साबुन इस तरह बदन पर रगड़ रहे थे, जैसे घोड़े की पीठ पर 'खरहरा' कर रहे हों।

साबुन लगा कर जब मित्र जी ने गङ्गा जी में डुबकी ली, तो अपनेराम को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बाल के कुछ गुच्छे मित्र जी का साथ छोड़कर पानी में बहे जा रहे हैं। मित्र जी जब पानी से बाहर आये तो अजीब समा नजर आया। सर के बाल, मूँछे और बदन के रोयें-रोयें साफ हो गये थे—यहाँ तक कि भौंहों के बाल भी उखड़ कर सपाट जमीन चमकने लगी थी। बात क्या है, कुछ समझ में नहीं आई। मित्र जी की शकल कैसी लग रही थी, यह अब तो याद नहीं रहा। आस-पास के लोग इस रोआँ-हीन मर्द को देखकर हँसने लगे। परन्तु मित्र जी अब तक अनभिज्ञ थे। मुझसे बोले—'थोड़ा-सा तेल दो....

मैंने शीशी खोलकर उनकी हथेली पर तेल उलट दिया। मित्र जी जब सर पर तेल रखकर थपथपाने लगे तो चौंककर बोले—

'अरे यह किसका सर है ?...."

"तुम्हारा ही तो है"—मैंने कहा।

"हर्गिज नहीं...." वे बोले—"मेरे सर में तो बड़े-बड़े बाल थे...." कह कर मित्र जी अलग-बगल देखने लगे कि कहीं उनके हाथ किसी दूसरे के सर पर तो तेल नहीं मल रहे हैं।

"हैं ! क्या बात है ?...." वे ताज्जुब में आकर बोले—"चमगादड़ ! मेरा सर क्या हुआ ?"

"तुम्हारा सर तो बरकरार है....मगर तुम्हारे बाल वह देखो गङ्गा जी में बहे जा रहे हैं...." मैं बोला।

"अरे ! मैं तो यह....यहाँ हूँ....मेरे बाल वहाँ कैसे पहुँच गये ?" मित्र जी बराबर अपनी सपाट खोपड़ी तैश में आकर चपचपा रहे थे।

अपनेराम की नजर साबुन के कागजी डिब्बे पर पड़ी तो सन्न रह गये ! चमगादड़िन जी ने शैतानी की थी। बाल-सफा साबुन का डिब्बा दे दिया था। अब क्या करूँ, सोच ही रहा था कि मित्र जी की दृष्टि भी डिब्बे पर पड़ी। पढ़कर माथा पकड़ बैठ गये वहीं, हाहाकार करते हुए।

"क्या मेरी मूछें भी साफ हैं ?" कहकर उन्होंने अपना हाथ मूछों पर फेरा। मूँछों का एक बाल भी उन्हें नहीं मिला, मगर तेल लगे हुए हाथ को नाक से पास लाते ही चौंक पड़े—"यह क्या बदमाशी है ? मिट्टी का तेल लाये हो आज ? शर्म तो आती नहीं तुम्हें ? एक तो बाल-सफा साबुन लगवा कर मुझे रोमहीन कर दिया, दूसरे मिट्टी का तेल सर पर लगाने को दे दिया...."

अब मैं अपने प्रिय मित्रजी को कैसे समझाता कि बदमाशी मेरी नहीं, श्रीमती जी की है। अन्त में गरजकर बोले—"जाओ आज से तुम्हारी दोस्ती का बाइकाट ! कम्बख्त पौने सात साल से मूछों को तेल पिलाते-पिलाते सवा दो इञ्च की लम्बाई तक लाया

था—तुमने सब मटियामेट कर डाला...."

उस दिन के बाद मित्र जी फिर कभी घाट पर दिखाई नहीं दिये। अपनेराम तो अब भी रोज जाते हैं।

चुचकी चमड़ी पर जवानी का जोश !

भई ! अपने मियाँ टिन्ना की चुचकी चमड़ी पर बुढ़ापे का मुलम्मा तो बीसों साल पहले चढ़ चुका था, परन्तु उनके धुकधुकी में अब भी जवानी का जोश लहरा रहा था। इसी जवानी के बल पर ही तो मियाँ टिन्ना ने 'टिन्ना' कर 'कब्रिस्तान' को हिन्दुस्तान से अलग करवा लिया। कायदे आजम तो थे ही, अब कब्रिस्तान के लाटे-आजम भी बन गये। सो लाटे-आजम बनकर उनकी जवानी अब रोज-रोज नई कलाबाजियाँ लेती थी और दिल लाख-लाख हसरतें लेकर घोड़े की टाप की तरह दुलकियाँ कसा करता था। अभी हाल ही में आपने क्या आज्ञा फरमाई थी कि कब्रिस्तान के किसी भी सूबे का शासन-दण्ड वे जरूरत पड़ने पर अपने हाथ में पकड़ सकते थे, या उस सूबे के गवर्नर को पकड़ा सकते थे।

यही नहीं। अखबार बन्धुओं ने खबर प्रेषित की थी—'मियाँ टिन्ना, ने बुढ़ापे का चोला एकदम बदल दिया और अब पूरे जवान बन गये हैं। इससे कोई आश्चर्य की बात नहीं। अपने यहाँ के बुजुर्ग कुत्ते भी तो कातिक का महीना आने पर जवानी के जोश में भर उठते हैं। सो मिया टिन्ना जी पूरे जवान हो गये थे। सावन था न ? बरसात का पानी खाकर कौन जवान नहीं बनेगा।

एक जवान-जनाना जी से मियाँ टिन्ना ने टटके प्रेम की भिक्षा माँगी थी, पत्र भेजकर। मगर हाय अल्लाह ! किसी कम्बख्त ने उनका प्रेमपत्र पढ़कर उनका राजफाश कर दिया। खुदा की मार पड़े उस पकड़ने वाले पर। भाईजान ! यह दुनिया है। कम्बख्त जवानी में न मुहब्बत करने का मजा और न बुढ़ापे में इतमीनान से मरने का सुभीता। क्या करें अपने मियाँ टिन्ना ?

कल्पना की कल्पना !

कलियुग की बीसवीं सदी के उन्नीस सौ अड़तालीसवें साल के अन्तर्गत कितनी ही पत्रिकाओं का जन्म हुआ। इनमें से कुछ तो अब तक जवान हो चली हैं और हर मास नई जवानी लेकर पाठकों पर बिजली गिरा जाती हैं। इनमें से 'चिनगारी' भी एक है। और कुछ तो अभी एकदम 'लल्ली' हैं और घुटनों के बल धीरे-धीरे रेंग रही हैं। अपनी सखी मेरठी-कल्पना भी इस किस्म की एक है। प्रगतिशील कहानी पत्रिका है। श्री आनन्द बड़ी लगन से इसको सम-पादते हैं। जैसा कि जुलाई अगस्त के संयुक्तांक में प्रबन्ध-सम्पादक महोदय ने व्यक्त किया है कि ८४ पृष्ठ की सारी पत्रिका श्री आनन्द अकेले ही भिन्न-भिन्न नामों से लिखते है, इसे मद्दे नजर रखते हुए हमें श्री आनन्द के 'पोढ़े' कलेजे की तारीफ करनी पड़ती है। जरा श्री आनन्द के नकली नामों का मुलाहजा फरमाइये—श्री ए० पी० कहानीवाला, श्री अलकपरी, श्री घर-वाला, श्री गुप्तचर आदि-आदि। तो यह कोई पत्रिका नहीं वरन श्री आनन्द की कहानियों का संग्रह है।

अपनेराम की नेक सलाह है कि श्री आनन्द कल्पना को सम्पादने के बदले स्वतन्त्र रूप से कहानी-संग्रह निकालें। पत्रिकायें तो पाठक इसलिए पढ़ते हैं कि वे भिन्न-भिन्न लेखकों की शैलियों का आस्वादन कर सकें। कल्पना के प्रबन्ध-सम्पादक महोदय का रोना है कि उन्हें पाठकों-एजेण्टों एवं विज्ञापनदाताओं का सहयोग नहीं प्राप्त हो रहा है! कुछ ने तो उन्हें 'निबुआ-नोन' चटाकर धोखा दे दिया है। हमें प्रबन्ध सम्पादने वाले जी से पूरी सहानुभूति है।

उनके इस गम से गमगीन होकर कभी-कभी अपनेराम भी दो-चार घड़े आँसू बहा लेते हैं। कोई 'निबुआनोन' भेज दे, अपनेराम उसे भी चाटने को तैयार हैं—एकदम रेडी।

हाँ! तो यह प्रगतिशील कहानी पत्रिका है और समाजवाद द्वारा देश का उत्थान चाहती है। तनिक इसकी देश-हितैषिनी कहानियों पर भी गौर फरमाइये। जून १९४८ अङ्क में 'न कहने वाली बात' शीर्षक' से श्री गुप्तचर ने पचास बरस के दो बूढ़ों की लौंडेबाजी दिखाई है। सदके! इसी तरह की कहानियाँ तो प्रगति-शील होती हैं। जुलाई अङ्क में श्री ए० पी० कहानीवाला की 'हाथ का मैल' नामक कहानी छपी है। इसमें एक मित्रजी दूसरे मित्र की पत्नी पर फिदा होते हैं और अपने मित्र से खुल्लमखुल्ला उनकी पत्नी के साथ एक रात सोने का आर्डर चाहते हैं। बलिहारी! इस प्रगति-शीलता की।

इनके अतिरिक्त श्री आनन्द का वैज्ञानिक जासूसी उपन्यास 'अदृश्य मानव' धारावाहिक रूप से छपता है। कल्पना का प्रचार है कि इस उपन्यास ने साहित्य को एक नई चीज भेंट की है, जिससे चारों ओर तहलका मच गया है। अपनेराम की राय में यह चीज बासी है। इससे रोचक तो रक्तमंडल, सफद शैतान आदि उपन्यास हैं।

फिर भी इतनी गहरी प्रगतिशीलता को लेकर निकलने वाली 'कल्पना' का हम उत्थान चाहते हैं और अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि यदि वे १००-५० प्रति हर महीने न मँगा सकें तो १०-५ प्रति तो मँगा ही लिया करें। ज्यादा नहीं तो किताबों पर कबर चढ़ाने के काम आयेगा।

गोरी चली नइहरवाँ!

हय-हय! आज स्वतन्त्रता दिवस है, परन्तु रौनक तो जैसे कुछ है ही नहीं। कैसे रहे रौनक? रौनक वाली 'गोरी 'बी' तो अपने नैहर लन्दन चली गई। कैसा सूना-सूना-सा लग रहा है सन् १९४८ का यह १५ अगस्त!

१५ अगस्त सन् ४७ की याद अपनेराम के दिलोदिमाग में एकदम बासी व ताजी है। तब घोड़ी (गोरी) बी हिन्दुस्तान में ही

हिनहिना रही थी। कितनी साज-सजावट, कितना उत्साह था उस दिन। मारे भीड़ के सड़क पर नाक छिड़कने तक की जगह नहीं थी—एकदम खचाखच मजमा था। एक से एक फाटक सजाये गये थे कि औरत-मर्द एक दूसरे से पिसते हुए भी घण्टों खड़े देखते ही रह जाते थे। कितना मजा आया था। पारसाल की बातें सोच-सोचकर अब भी अपने मुँह से सी-सी या सू-सू निकलने लगता है।

पारसाल इतनी रौनक जो थी, वह महज गोरी बी की उपस्थिति के कारण। गोरी बी को दिखाने के लिए काले साहबों ने वह सजावट की थी कि उन्हें भी मालूम हो गया—"जूते खाने वाले भी जूती पहनना जानते हैं।" मगर हाय! इस साल तो गोरी बी चली ही गई, १५ अगस्त की कौन कहे १५ जून को ही—सो भारत उनके बिना रँडुआ हो गया। पता नहीं कि हमारे नेताओं को एकाध तोले रुआँस छूटी या नहीं, परन्तु अपनेराम तो कई रात अकेले बिस्तर पर पड़े सिसकते रहे।

नेहरूजी को तो जरूर ही रोना आया होगा। इतने दिनों तक गोरी बी का साथ था—आपस में लड़े-झगड़े जरूर, मगर हमेशा 'दिल से एक—बदन से दो' रहे। वक्त बे वक्त गोरी बी की 'खुदीवल' भला नेहरू जी कभी भूल सकते हैं? मेहमान खाने (जेल) की गरमा-गरम रोटी अपने नेताओं को ता कयामत याद रहेगी।

सो गोरी बी तो नैहर गईं और अपनेराम सिसकते हुए मिर्जापुरी कजली की 'भाखा' में गा रहे हैं—"गोरी चली नइहरवाँ, बलम सिसकी देइके रोवैं।"

बरस गई राम!

सुसरी (सुश्री) चमगादड़िन जी की बहुत दिनों से यह शिकायत थी कि अपनी नन्हीं-मुन्नी 'खटिया' साहिबा जो हैं, वे हम दोनों के शरीर के लिए निहायत सँकरी पड़ती हैं और हम, जगह की कमी के कारण रात भर उनके सुकोमल शरीर पर लादी की तरह

लदे रहते हैं कि उनकी साँस भी बड़ी मुश्किल से चल पाती है। सो इन खटिया जी का फौरन से पेश्तर बायकाट कर देना चाहिये। मगर अपनेराम की राय यह थी कि कोई पड़ोसी मरे, तो उसकी चिता को इस खटिया का दान कर दें। ससुरे खटमल भी पड़ोसी जी के साथ ही राहेआसमान को तशरीफ ले जायँ। मगर देवीजी ने बेहद जल्दीबाजी से काम लिया। एक दिन उड़कर घर आया तो देखता क्या हूँ कि एक लुहार महाशय बड़ी ही बेदर्दी के साथ खटिया जी का अंग-अंग अलग करके उन्हें कत्ल कर रहे हैं। फिर अपनेराम कलेजा थाम कर चुप ही रहे।

खटिया साहिबा की बदौलत उस दिन आग जली और खूब रोटियाँ बनी। मैंने सोचा, कोई पड़ोसी ससुरा तो मरा नहीं, खटिया जी पहले ही 'टें' बोल गईं। खैर! 'रामनाम सत्य है।'

अब समस्या यह आ खड़ी हुई कि 'रात्रिकाले' हम दोनों जीव शयन किस वस्तु पर करेंगे। अपनेराम तो कंकड़ीय जमीन पर भी पटोहे की तरह पड़कर सरेशाम मुर्दा बन जा सकते हैं परन्तु श्रीमती जी की चमड़ी तो कोमल है ही, माँस भी मुलायम है और हड्डी तो बाँस की टहनी की तरह लचकीली है, सो वे किसी प्रकार भी जमीन पर नहीं सो सकेंगी। सोचा, चलकर शहर से कोई अच्छी-सी पलंग लायें। मगर आसमान पर देखा तो हिमालय के टुकड़े यानी 'कारे-कारे मेघा' इस तरह घिर आये थे कि हाय तोबा! चारों ओर दिन को ही घटाटोप अन्धकार जैसा छा गया था।

मगर देवीजी ने इस तरह खोदा-खोदी मचाई कि अपनेराम को बाजार जाना ही पड़ा। रास्ते में 'कैट्स ऐण्ड डाग्स' के रूप में पानी गिरने लगा। छतरी की छाती छितरा गई और अपनेराम भींगते चले। पचास में एक बड़ी खुशनुमा पलंग खरीदी। दूकान्-दार ने कहा—"अरे साहब! यह क्या गजब कर रहे हैं। पानी में ले जाने से तो पलंग खराब हो जायगी।"

पलंग आई साहब किसी तरह घर। रास्ते भर भींगती आई। क्या करते, दूसरा कोई चारा नहीं था! अपनेराम भी भींगते आये।

देवीजी पलङ्ग देखकर बड़ी खुश हुई और मुझे मुफ्त में ही एक बोसा दे डाला। रात में, पलंग पर गद्दा लगाकर हम दोनों अत्यन्त उल्लास के साथ सोये। पानी अब तक बरस रहा था, दूनी तेजी के साथ, गरजकर, चिल्लाकर। हवा तो ऐसी ठण्ढी चल रही थी कि बूढ़ों को मस्ती करवटें लेकर उठ रही थी। फिर अपने लोग तो एकदम जवान थे।

रात किस तरह बीती, यह पता नहीं, सबेरे नींद खुली। अपनेराम आँखें मूँदे ही पलंग पर उठकर बैठने लगे तो सर में इतने ओर से टक्कर लगी कि पुनः सो जाना पड़ा, जैसे किसी ने हथौड़ा मारकर फिर सुला दिया हो। आँख खोला तो कमरे की छत को ठीक अपनी नाक के ऊपर मँडराते देखा। अपने राम ने नापा तो छत और नाक के बीच का फासला केवल एक बालिश्त था। तबीयत परेशान हो उठी। यह मैं छत के इतने नजदीक कैसे पहुँच गया? रात में पलंग पर सोया था तो पलङ्ग जमीन से डेढ़ फुट ऊँची थी और कमरे की छत तो पन्द्रह फुट ऊपर से कम न थी। फिर क्या बात है?

अपनेराम ने देखा तो शरीर अब तक पलंग पर ही था और देवीजी भी पास ही पड़ी हुई नाक से बिल्ली की तरह गुर्रा रही थीं। अपनेराम ने करवट लेकर पलंग के नीचे झाँका तो झाईं छूटने लगी। पलंग के पाये, जो रात में डेढ़ फुट ऊँचे थे, इस समय बढ़ कर दस-बारह फुट के हो गये थे और उनकी गाँठ में हरी-हरी पत्तियाँ उग आई थीं। हाय राम! यह क्या जादू है? डेढ़ फुट के पाये बारह फुट कैसे हो गये और उनमें हरी डाल की तरह पत्तियाँ कैसे उग आईं? अपने राम जोरों से चिल्लाये। सुनकर चमगादड़िन जी हड़बड़ा कर उठने लगीं तो अपनेराम ने उनका सर पकड़कर

कर उन्हें पुनः पलङ्ग पर पटक दिया, क्योंकि उठने से उनका खोपड़ा छत से टकरा जाता।

इतने में ही अपना चिल्लाना सुनकर पड़ोसी दौड़े आये। पलङ्ग की ऊँचाई देखकर उन्हें भी बहुत आश्चर्य हुआ। किसी तरह बढ़ई को बुलाकर पलंग के पाये कटाये गये, तब हम दोनों प्राणी नीचे उतर सके।

सबसे पहले अपनेराम दौड़े-दौड़े पलंग के दूकानदार के पास आये और उसे डाँटकर बोले—"तुमने जादू की पलंग हमारे हाथ बेच दी...."

सारी दास्तान सुनकर दुकानदार हँस पड़ा। बोला—"मैं तो साहब कल ही कह रहा था कि पलंग को पानी में भिगोते हुए मत ले जाइये, क्योंकि पलङ्ग हरी लकड़ी की बनी हुई है। हम क्या करें साहब? रास्ते भर पलंग भींगती गई, रात में भी पानी काफी बरसा—इसीलिए हरी डाल के बने हुए पलंग के पाये रात में बढ़ गये और उनमें पत्ते निकल आये। सारा कसूर बारिस का है...."

श्री चमगादड़ो जयति !

हाय-हाय! आजाद हिन्द फौज के सालारेजंग श्री ढिल्लन महाशय आजकल 'अन्ट-सन्ट' (अनशन) कर रहे हैं। वह इसलिए कि भारत सरकार ने आजाद हिन्द फौज के संस्थापक श्री मोहन-सिंह का तिरस्कार किया, उन पर अविश्वास किया और उन्हें पश्चिमी सीमा की रक्षा के लिए दलबन्दी करने की अनुमति नहीं दी।

ढिल्लन महाशय के इस 'ढिलन' से भारत सरकार चाहे चुप रह जाय, परन्तु अपनेराम तो जरूर रोयेंगे, पुक्का फाड़कर, गला गलगलाकर—क्योंकि केवल ढिल्लन महाशय ही नहीं आजाद हिन्द फौज के अधिकांश जीव अपने ही भाई बिरादर ठहरे!

आप पूछेंगे कि कैसे? भई! आजाद हिन्द फौज के ज्यादातर सैनिक पहले बृटिश साम्राज्य के रक्षक थे—गोरों का तौलते थे।

बर्मा की लड़ाई में पासा उलटा पड़ा और ये सभी, चिपटी नाक-वाले जापानियों के बन्दी बन गये। बन्दी बन गये तो कोई ससुराल में तो थे नहीं कि खातिरदारी होती। सो इन्हें नाना प्रकारेण कष्ट दिये जाने लगे। इसी बीच नेताजी सुभाष का जापानियों से गठबन्धन हुआ और उन्होंने अपने प्रबल व्यक्तित्व द्वारा सिसकते हुए इन बन्दियों में नई जान फूँकी और उन्हें आजाद हिन्द फौज में शामिल हो जाने के लिए ललकारा। कुछ तो उनकी ललकार के असर से और कुछ यह सोचकर कि इस बन्दी जीवन से तो अच्छा है रणभूमि में मर जाना, बन्दियों ने उनकी बात मान ली।

सेना बनी, लड़ाई ठनी और हार हुई—नेताजी भी कजाके-अजल का तीर खाकर लुप्त हो गये। जापानियों के बन्दी—ब्रिटिश सरकार के बन्दी बने और लाल किले में किलकिलाने के लिए छोड़ दिये गये। देशवासियों ने यह घटना सुनी तो उन्हें जोश चढ़ आया। नेताजी के नाम पर उन्होंने इन बन्दियों को छुड़ाया। पत्रों ने इनका खूब प्रचार किया और दो साल पहले गोरों की रक्षा करने वाले हमारे नेता बन गये।

अब इधर इन वीर सेनानियों की जो-जो पोलें खुल रही हैं उनसे अपनी आँखें भी खुलती जा रही हैं। काश्मीरी लड़ाई का सचालन इसी फौज के भूतपूर्व अफसर साहब कर रहे हैं। मोहन सिंह सीमा रक्षक दल कायम करके, कुछ राज्यों से मदद लेकर स्वतन्त्र शासन का मजा लूटना चाहते थे, ऐसा सुनने में आया है। कुछ समझ में नहीं आता। अपनेराम का मतलब यह नहीं कि आजाद हिन्द फौज के सभी ऐसे हैं या थे—परन्तु अधिकांश तो उनमें चमगादड़ीय मनोवृत्ति के थे और मजबूरन बन्दी जीवन से ऊबकर देशभक्त बने थे। ऐसों को हम तहेदिल से 'दाद' देते हैं।

हाँ! श्री ढिल्लन महाशय ने ९ दिन तक 'अण्टशण्ट' करके उस सड़ाक से तो तोड़ भी डाला—सुना है सरकार ने उन्हें करारा अश्वासन दिया है। मगर अपनेराम का विश्वास न तो सरकार के

शासन पर है और न आश्वासन पर। फिर दुअन्नी भर के आश्वासन पर सट्ट से 'अन्टशन्ट' तोड़ देना, कहाँ की बुद्धिमानी है? एक बार 'अन्टशन्ट'—एक बार 'अङ्ग-भङ्ग'—है न चमगादड़ीय मनोवृत्ति ?

बोलिये, प्रेम से—श्री चमगादड़ो जयति !

मिर्जापुर कइलऽ गुलजार !

सावन का महीना और मिर्जापुर की गजली—क्या बात है! सुभान अल्लाह ! बड़े भाग्य से सावन में मिर्जापुर के दर्शन होते हैं।

जागरण की रात ! चारों ओर मस्ती ! हरे लाल-पीले दुपट्टे! तक-तक कर चलते हुए 'नैना बान' ! छम-छम करते हुए गहने ! ताक धिनाधिन बजती हुई ढोलें ! और घेरा बाँधकर खड़ी हुई किन्नरियों का अलाव—

"मिर्जापुर कइलऽ गुलजार हो, कचौड़ी गली सून कइलऽ बलमू !"

चारों ओर खड़ी हुई मनचलों की टोली, मन्त्रमुग्ध सी कजली सुनती हुई और आँखें लड़ाती हुई। अपनेराम भी खड़े थे अपने एक दोस्त के साथ ! आधी-रात के समय भी मिर्जापुर जाग रहा था—जगमगा रहा था। मेला लगा था।

अपनेराम आगे बढ़े। दूसरे चौराहे पर दूसरी टोली कजली गा रही थी—सभी जवान थीं—जानमारू अदा से लैस ! गा रही थीं—

अपने लहरी के करनवाँ
गेंदवा होइ न जात्यू ना।
जो मैं जनत्यू लहरी के
भुखिया लगिहैं ना,
अरे रामा, पुड़िया से मिठइया
बरफी होइ न जात्यू ना !

वाह-वाह ! लहरी के करनवाँ 'गेंदवा' बनने की लालसा

युवतियों में ही है। क्या कहते हैं।

आगे बढ़े तो तीसरी टोली और तीसरा गीत—

हमसे करो ना ठिठोली, अरे साँवलियाँ,
हमसे करो ना ठिठोली..........
अभी तुम हो नादान, काहे मारे नैना बान—
कैसे सीखे बोली ठोली, अरे साँवलियाँ!

बढ़ चले। एक जगह मर्द गर्दभ स्वर में गा रहे थे, विरह से व्याकुल होकर—

चिरई कब देबू दरसनवाँ
बीतल मास सवनवाँ ना।
बादल गरजे, बिजली चमके,
मोर मचावे शोर।
ऐसे समय में जिन तरसावऽ
ताकऽ हमरी ओर।
मानऽ मोरे कहनवाँ ना।
चिरई कब देबू....
तू मुसका के गिरोलू बिजली,
नैन कमर लौं बाँध।
रामदुहाई सिसकत बाटीं,
निकसत नाहीं प्रान—
पथरा गइल नयनवाँ ना।
चिरई कब देबू....

वाह-वाह! सुनके तबीयत मस्त हो गई। पसरहट्टे आया तो क्या कहने? जन्नत था साहब वहाँ, तबलों की ठनक नीचे से सुनाई दे रही थी। कुछ परियाँ सजी हुई बारजे पर बैठी थीं।

ऊपर देखा। एक ने आँख मार कर ऊपर खींचा, तो अपने-राम दनदनाते हुए 'कोठे' पर चढ़ गये। मुजरा शुरू हुआ। कजली की बहार—जागरण की रात—सो कजली ही सुनाया उसने—

जनिया बताई दऽ बतियाऽ
रतिया काहे जोर कइलू,
मुँहवाँ दूसरी ओर कइलू ना !
जब हम कइली तोहसे बतिया,
चिपक्यू जाई थामि के पटिया,
हथवा धरतइ बप्पा मइया
तू अन्नोर कइलू,
माई-माई शोर कइलू ना !

तो साहब इस कोठे पर आकर अपना भ्रमण समाप्त हुआ और रात अधिक बीती जानकर, कुछ दे दिला वहीं कोठे पर ही सो रहे।

बच्चा हुआ !

यारों सुनकर ताज्जुब मत करना। आज अपने राम एक अजूबी बात आपके सामने रक्खेंगे। अपने महासम्पादक श्री 'एक हजार आठ' महाराज गर्भ धारण और प्रसव करने में एक हैं ! देखिये ! आप चौंक रहे हैं ! नाक-भौं मत सिकोड़िये साहब ! बात बिल्कुल सच्ची है।

'समपादक' जी को दसवें महीने एक सलोना-सा बच्चा हुआ है। बच्चे का नाम है 'दीपाबली अङ्क'—पूरे नौ महीने तक चिनगारी को गर्भ में धारण करने और अपने खून से इसकी रग-रग सींचने के बाद यह 'विशेषांक' रूपी बच्चा पैदा हुआ।

बच्चे के पैदा होते ही चिनगारी कार्यालय में खुशियाँ मनाई जाने लगीं। चिनगारी के शुभेच्छुकों की भीड़ उमड़ पड़ी ! भूतपूर्व प्रधान सम्पादक श्री अर्जुन चौबे काश्यप को लेडीफोन द्वारा इस 'डिलेवरी' की खबर दे दी गई। वे तुरन्त गौनहारिनों का एक बाँका दल लेकर आ पहुँचे। ढोलक ठनकने लगी। सज़ीरे टुनटुनाने लगे। होने लगा सोहर धूम-धाम से।

भइलें कन्हइया मोरे, बजत बधइया घर थर-थर हो।
ललना पीर उठे तन मोरे, काँपत करेजवा कि थर-थर हो॥

उधर सोहर हो रहा था, इधर सलोने बच्चे को लोग गोद में उछाल रहे थे। अपनेराम भी पूरे जोश के साथ इस जश्न में शामिल थे। महा सम-पादक जी कुछ लजाये हुए, कुछ शरमाए हुए लेटे थे। कोई उनके सर पर हाथ फेर रहा था, कोई पैर दाब रहा था—भाई प्रसववाली बात ठहरी, प्रसूता को धैर्य तो बँधाना ही पड़ेगा। इस 'डिलेवरी' के समय श्री प्रभंजन जी दाई का काम कर रहे थे, जिसे उन्होंने अत्यन्त पटुता के साथ निभाया। अपनेराम ने जोरों से चिल्ला कर नारा लगाया—"बोलो प्रभंजन दाई की जै!'

अपनेराम की मेहरारू ने जब यह समाचार सुना तो माथा ठोंकने लगी कि 'हायराम! जब पुरुष ही प्रसव करने लगेंगे, तो हम नारियाँ क्या करेंगी?' तो साहब दीपावली अङ्क आपके सामने है। कितना सुन्दर है, यह तो आप स्वयं ही देख रहे होंगे। इसके लिए सम्पादक जी को बधाई का तार अवश्य भेज दीजिए। तबीयत खराब रहने पर भी उन्होंने आखिर दीपावली-अङ्क पैदा करके ही छोड़ा। एक बार प्रेम से गद्‌गदायमान होकर बोलिए—"पुरुष-प्रसूता की—जै! जै!...."

हाय जवानी, हाय पानी!

पानी और जवानी! क्या कहते हैं? भाई! इस साल की बरसात में अपनेराम ने पानी की जवानी देख ली। गङ्गा मैया तो इस तरह उमड़ीं, जैसे लड़कियों का पन्द्रहवाँ साल। कितनी जानें कुर्बान हो गईं, कितने घर बर्बाद हो गये। भई! पानी के जवानी की बाढ़ थी नऽ! अपना बनारस भी 'पनियाते-पनियाते' पूरा टापू बन गया। गली दर गली, सड़क-दर-सड़क, चारों ओर कमर हिलाने भर को पानी और उसमें छपछपाती हुई नावें। क्या सीन था, क्या दृश्य था कि हाय-हाय!

सब कुछ था, परन्तु अपनेराम के घोंसले तक पानी के आने की हिम्मत नहीं पड़ी। बगलवाले घर की चौखट तक पानी पहुँच चुका था। श्रीमती चमगादड़िन जी कहती थीं कि ऊपर के मन्जिल पर सोया जाय, पता नहीं कब पानी घर दबाये। परन्तु अपनेराम तो निचली मञ्जिल में ही सोने के आदी थे, सो उन्हें टका-सा जवाब दे दिया। वे रिसाकर कोठे पर सोने चली गईं और हम नीचे ही अपनी चारपाई पर पड़ रहे।

सबेरे चमगादड़िन जी की चिल्लाहट सुनकर नींद खुली। वे चिल्ला रही थीं—"उठो....हाय राम। पानी ! पानी !...."

अपने राम ने पड़े ही पड़े आखें खोलीं, तो देखकर काँप उठे। अपना कमरा क्या था हिन्द महासागर बन गया था। चारों ओर स्वच्छ गङ्गाजल लहरा रहा था। अपनी चारपाई एकदम पानी में डूबी हुई थी और अपनेराम का 'तीन बटा चार' शरीर भी पानी के अन्दर 'सूतायमान' था। पानी के ऊपर केवल अपनी आँखें और नाक दिखाई पड़ रही थी। हाय दैया ! थोड़ी देर तक और न जागता, तो पानी की जवानी में डूब ही जाता।

अपनेराम तेजी से उठे और पानी में छपछपाते हुए दौड़कर देवी जी से लिपट गये, जो सीढ़ी पर सूखी खड़ी थीं। आफत की चोट खाकर रोने लगे हम, तो देवी जी ने हमारे आँसू पोंछे और कहा—"कहती थी न दरवाजे के छेद से जाने कब पानी पिल पड़े...."

मैंने कहा—"तुम्हीं ने तो बिल्ली पाल ली है और उसके आने-जाने के लिए किवाड़ में गुफा जैसा छेद करा लिया है। अगर यह छेद न होता, तो घर में पानी कैसे आता ? सच मानो, अगर आज मैं डूब कर मर जाता, सारा पाप तुम्हारे और तुम्हारी बिल्ली के ऊपर आता...."

"तुम भी घोड़ा बेचकर सोते हो...." बोलीं वे।

"अजी देवी जी ! घोड़ा तो क्या गदहा भी अपने बाप के घर में नहीं था, तो बेचेंगे किसे ? बड़ी रात तक तो अकेला तुम्हारे

विरह में 'करवटियाँ' लेता रहा। फिर आँख लगी तो या ईश्वर !...."

किसी तरह देवी जी ने हमें धैर्य बँधाया। दूसरे दिन वे पानी में डुबकियाँ लेने लगीं। कम्बख्त को सावन-भादों में ही गङ्गा-स्नान करना था। नावें तेजी से आ-जा रही थीं, जिन पर जनता की सेवा करने वाले स्वयंसेवक सवार थे। जनता तो गले भर पानी में डूबती-उतराती गली पार करती और ये सेवक नावों पर सैर करते हुए भङ्ग-बूटी छाना करते थे। कोई फोटो ले रहा था, तो कोई पानी में जाती हुई किसी युवती के सौन्दर्य का उभार देख रहा था। वास्तविक सेवा-कार्य करने वाले कम थे—सैर करने वाले ज्यादा थे।

खैर साहब ! जवानी हमेशा तो रहती नहीं, पानी की जवानी भी कम हो गई। अपनेराम का घोंसला अब रहने लायक नहीं रह गया है, क्योंकि उसकी एक दीवार इस तरह सीधी फट गई है, जैसे देवी जी की माँग !

जब तुमहीं चले परदेश !

हाय मियाँ टिन्ना ! अब क्या करूँ। तुम तो हम सबसे टिन्ना-कर आसमान की सैर करने चल दिये, अब हम जमीन वाले किसकी सूरत देखकर जिन्दा रहेंगे ?

११ सितम्बर, १० बजे रात—हाय-हाय ! मसीहा बन के बीमारों को किसे पे छोड़ जाते हो—तुम्हारे आशिक रोते-गाते ही रहे और तुमने आँखें मूँद ली। हिन्दुस्तान से कब्रिस्तान को अलग कराया था तुमने, तो क्या खुद ही सोने के लिए। हिन्दुस्तान के लीदरान यदि जानते होते तो तुम्हें कभी कब्रिस्तान न देते। तुम रूठे रहते—नाज करते अपनी बला से।

तुम तो चले गये, मगर अब कब्रिस्तान के जिन्दे जिन्न क्या करेंगे ? खुदा तुम्हें जन्नत बख्शे, यही अपनेराम की कामना है। खुदा की खूब खुशामद करना, कहीं ऐसा न हो कि पिछले दो सालों से होती हुई खून-खराबियों का सारा कसूर तुम्हारे ही

मत्थे मढ़ दें।

किसी ने कहा है न—

न आँख होती, न कोई चुभता,
न दर्दे-दिल के आजार होते।
कसम तुम्हारी न तुम पै मरते॥
न दिल लगाते, न ख्वार होते॥

ठीक उसी तरह अगर तुम न होते, तो यह वैमनस्य कैसे खड़ा होता, हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे को 'दो' क्यों समझते, कब्रिस्तान कैसे मिलता—ठीक है! अपनेराम तुम्हारी रूह को बधाई देते हैं। क्योंकि 'हँस-हँस के लिया है पाकिस्तान'—मगर 'लड़ के लेंगे हिन्दुस्तान' वाला सपना तो शायद तुम अपने साथ ही लेते गये।

रसूलिल्लाह रहमाने रहीम!

ले लपक के!

लीजिये साहब! हम-आप तो नाहक ही बेचारी सरकार को दोष दे रहे थे। हमको-आपको तो बोलना ही न चाहिये था। देखिये नऽ! सरकार जब निजाम साहब की 'खोदा-खोदी' से खुद परेशान ही उठी, तो चढ़ दाबा बेचारे को, जैसे खिसियानी बिल्ली चूहे को दबोचती है। बेचारे आला-हजरत श्री निजाम साहब इस चढ़ाई से सिटपिटा गये। सुरक्षा परिषद में भी बेचारे को शरण न मिली। हिन्दुस्तान की फौजें क्या थीं, तूफान थीं। जिधर से गईं, उधर के पेड़ तो क्या घास-फूस तक उखाड़ती गईं। हाय-तोबा मच गया। १३ सितम्बर ४८ के ४ बजे सुबह से लेकर १७ सितम्बर के ५ बजे शाम तक घमासान लड़ाई हुई।

अन्त में आला हजरत ने 'हथियार' डाल दिया। उनके 'हथियार' डालने से सरकार बड़ी खुश हुई। क्यों न हो, एक तो निजाम साहब का 'हथियार' डालना, दूसरे रजाकारों का नाश—

सरकार का दाँव 'चौचक' पड़ा और दुश्मन चारों खाने चित्त ? बलिहारी !

अब देखना है कि आला हजरत के साथ नाज-नखरेदार हमारी सरकारी किस तरह पेश आती है। आया उन्हें 'प्रीतम' कह कर गले से लगाती है या चप्पल मार कर शयनागार से निकाल बाहर करती है।

लग गई राम !

क्या ? करेजवा में चोट ?....अजी नहीं साहब ! विलायत की हवा ! अपने वजीरे आजम नेहरूजी वायुयान द्वारा बिल्लाइत की सैर कर आये न सो वहाँ की हवा की चपेट तो लगेगी ही।

बापू बिल्लाइत जाते थे तो केवल एक धोती पहन कर नंगे-धड़ंगे, जिन्हें देखकर विलायती लोग-लुगाई दङ्ग रह जाते थे, परन्तु उनके बेटे बिल्लाइत गये तो कोट-पैण्ट-टाई पहन कर। भाई। वहाँ के लोग जानेंगे कैसे कि यही हैं हिन्द के वजीरे-आजम !

पेरिस की भी सैर कर आये नेहरू जी—वही पेरिस, जो जन्नते-जमीं, परिस्तानेजहाँ और दुनियाये हुस्न है।

मगर शेर तो शेर, चूड़ीदार पाजामे से बँधा हो, चाहे पैण्ट-टाई थे। भारत का यह शेर इतने जोर से दहाड़ा पेरिस के बीच, की पेरिस तो पेरिस सारी दुनियाँ काँप उठी। सुनते हैं कि श्री चर्चिल का जलता हुआ सिगार छटक कर उनकी गोद में आ गिरा, बेचारे का पैण्ट जल गया और एक गोलाकार काला छेद भी हो गया। श्री स्टालिन इस दहाड़ से इतने डरे कि उनकी हँसियाँ तो हँसती रही और हथौड़ा उनके सर पर गिरकर कुटम्मस करने लगा। कहते हैं कि अमरीकिनियों के पेट का हमल तक हिल गया।

शेर ने वहाँ क्या फरमाया—"पश्चिम वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया में पूर्व भी है, पूर्व में एशिया भी है, एशिया में भारत भी है, भारत में नेहरू भी है और नेहरू के इशारों पर

नाचने वाले कितने ही खद्दरपोश, कितने ही नरकङ्काल, कितने ही भूखे अपाहिज हैं....'

भाई! पूर्व की बात और एशिया-भारत, नेहरू के विषय में पश्चिम वाले तो बहुत पहले से जानते थे—मगर यही नहीं जानते थे कि भारत में सुराज हो जाने पर भी नरकङ्काल बसते हैं। वे तो भारत को सोने की चिड़िया तब भी समझते थे और अब भी समझते हैं। अब अपनेराम को देखना तो यह है कि पश्चिम से दहाड़ कर आया हुआ शेर भारत में भी कुछ करामात दिखाता है या नहीं? दहाड़ से दुनिया वाले तो डर ही गये हैं, अब यही मौका है शिकार करने का।

दूध देने वाला मर्द !

अपने मित्रों में भी बड़े विचित्र जन्तु हैं। आप दूध देने वाली गाय, भैंस, बकरी, ऊँटिनी, गर्दभी आदि को जानते हैं, परन्तु दूध देने वाले मर्द की बात आपके लिए एकदम 'टटकी' है। मगर है यह बात एकदम अटल सत्य। हमारे एक मित्र दूध देते हैं, एक दो सेर नहीं, दस-बीस सेर रोज। आप पीते जाइये वे देते जायेंगे।

तो इन मित्रजी का आज आपसे परिचय करा दूँ। इनका नाम है श्रीनाथ सिंह मौर्य। आप चौकेंगे जरूर, क्योंकि अब तक आपने केवल चन्द्रगुप्त मौर्य का ही नाम पुस्तकों में पढ़ा था, मगर ये इतिहास में दूसरे मौर्य हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के ही घराने में पैदा हुए हैं। मौर्य खानदान का सच्चा रक्त आपकी नसों में है। फर्क इतना ही है कि आपके पूर्वज दूध पीते थे और आप दूध देते हैं।

साल भर पहले आप फौज में थे, परन्तु वहाँ इन्हें दूध देने वाली बीमारी नहीं भई थी। अगर वहाँ दूध देते होते, तो सारी फौज का कार्य मुफ्त में ही चल जाता। जब से आप फौज से 'डिस्चार्ज' होकर घर आये, तभी से आपको यह भयानक बीमारी हो गई है। और अब तो काफी शुद्ध दूध देने लगे हैं।

भाई ! क्या करें । आमदनी का कोई जरिया था नहीं, सो यह जरिया अच्छा निकल आया, खूब दूध देते हैं, स्वयं पीते हैं—दूसरों को भी पिलाते हैं । स्वयं तो मुफ्त पीते हैं और दूसरों का पैसा लेकर पिलाते हैं । एक रुपये का डेढ़ सेर देते हैं—शुद्ध दूध । उसमें केवल इतना ही पानी मिलाते हैं, जितना स्वयं मुफ्त पिये रहते हैं ।

सुबह चार बजे उठते हैं ! सायकिल में दो बाल्टियाँ लटका कर शहर से दूर एक पहाड़ी गाँव में चले जाते हैं । वहाँ एक रुपये का साढ़े तीन सेर दूध खरीदते हैं ! फिर दौड़े-दौड़े शहर आकर अपने ग्राहकों को दूध देने लगते हैं ।

अपनेराम को उनका यह पेशा इतना पसन्द आया कि एक दिन कह ही बैठे—"यार मौर्यजी ! मुझे भी दूध देने की शिक्षा दो । मैं भी कल तड़के तुम्हारे साथ चलूँगा । मुझे अपनी सायकिल पर बिठाये चलना..."

"अरे म्याँ !"—वे बोले, यद्यपि मैं मियाँ नहीं हूँ—"वह पहाड़ी गाँव है । रास्ते में भालू लगते हैं ?"

"अजी भालू की ऐसी-तैसी....कहाँ लगते हैं ?"

"रास्ते में !"

"मतलब कि किस तरह लगते हैं ?...." हमने पूछा ।

"अजी लगते क्या हैं, काट खाते हैं...." वे बोले ।

"कम्बख्त कुत्तों से भी गये गुजरे हैं...." हमने कहा—"इन भालुओं को काट खाने का मर्ज कब से लगा ?"

"तुम मानते नही तो चलो, कल चलना...."

दूसरे दिन अपनेराम भी मौर्यजी के साथ चले । एक ही सायकिल पर हम, दो बाल्टियाँ और मौर्यजी थे ।

दूध लेकर लौटते समय एक भालूजी मिल ही गये । अपनेराम ने तो उन्हें देखा नहीं । मौर्यजी ने देखा, तो घबड़ा कर हैंडिल छोड़ बैठे और रेले की सायकिल रेलती हुई एक पेड़ से टकराई । मौर्यजी

रैले के नीचे पड़े हुए घिघियाने लगे—"भा....भा....भालू !...."

अपनेराम ने भालू साहब को अपनी ओर आते देखा, तो एकदम घबड़ा गये ! आव देखा, न ताव, चट्ट से उसी पेड़ की फुनगी पर जा चढ़े और पत्तों से अपने बदन को ढँक लिया।

कम्बख्त भालू भी एक ही था—टेलीस्कोप से भी तेज आँखें थीं शैतान की। जमीन पर घिघियाते पड़े हुए मौर्य जी को तो उस कमीने ने देखा नहीं, उल्टे आसमान पर बादलों में छिपे बैठे अपनेराम को उसने बखूबी देख लिया और लगा 'सर नीचे टाँग ऊपर' वाले आसन से पेड़ पर चढ़ने। अब तो जान नाक के बालों में आ अँटकी। उधर से भालू महाशय शीर्षासन करते हुए चढ़े आ रहे थे।

अन्त में एक तरकीब सूझ ही गई। जेब टटोली तो एक अखबार और दियासलाई मिली। दियासलाई जलाकर अखबार में आग लगाई और जब वह जलने लगा तो उसे भालूजी के ऊपर गड़ाप से छोड़ दिया। भालूजी आग देखकर घबड़ा गये और भद्द से जमीन पर चारों खाने चित्त गिरे। गिरते ही उठे और उठते ही बेतहाशा भाग चले।

अपनेराम धीरे से पेड़ के नीचे उतरे। देखा मौर्यजी सायकिल के नीचे पड़े हुए आँख मूँदे हनुमान बाहक का पाठ कर रहे थे। अपनेराम ने उन्हें उठाया—"क्यों जी, सायकिल हटाकर उठे क्यों नहीं ?"

"तुम तो हो उल्लू ! यह साइकिल कवच से कम थोड़े ही है। साइकिल के नीचे पड़ा था, तभी तो उस उल्लू के पट्ठे की नजर मुझ पर पड़ी नहीं। समझा होगा, मेरा बदन भी सायकिल का पुर्जा होगा...."

"अरे यार सारा दूध तो...." मुँह से निकला।

सायकिल के गिरने से बालटियाँ उलट गई थीं और सारा दूध जमीन के गले मिलकर लोट रहा था। मौर्यजी को चोट भी कुछ आ गई थी। किसी तरह हम दोनों शहर आये।

मौर्यजी तो अपने घर चले गये और मुझे कुछ ग्राहकों के यहाँ जाकर यह सूचना देने का भार सौंपा कि आज दूध नहीं आयेगा- ताकि उनके बच्चे सिमियाते ही न रह जायँ। अपनेराम पहले ग्राहक के यहाँ गये। दरवाजा खुला और एक देवीजी हाथ में लोटा लिए इस तरह लचकती-लपकती निकलीं कि मेरा कलेजा तक दहल उठा। मुझे देखकर चौंक पड़ीं। थोड़ा-सा घूँघट काढ़कर तिरछे देखती हुई, कुछ मुस्कुराती-कुछ बिजली गिराती बोली—"कहिये..."

"जी ?..." मैं घबड़ाकर बोला—"मैं आपको चूसित करने आया था....कि....कि...."

"चूसित क्या ?"—वे तमककर बोलीं।

"माफ कीजिये, चूसित नहीं, सूचित करने आया था....क्या बताऊँ मेरी यह जबान चमगादड़िनजी ने खींच-खींचकर बिगाड़ दी है..."

वे हँसने लगीं। बोलीं—"ये चमदादड़िनजी कौन हैं ?"

"अजी वे मेरी श्रीमती हैं यानी घरवाली...." मैं बोला— "और मैं हूँ श्री चमगादड़ यानी चिनगाड़ी वाला चमगादड़...."

"आप क्या सूचित करने आये हैं ?"

"ओह, मैं तो भूला जा रहा था....मैं आपको यह चूसित.... च....ज सूचित करता हूँ कि आपके दूधवाले को आज दूध नहीं उतरा...."

"क्या मतलब ?"

"मतलब आज दूध आपको नहीं आयेगा—कृपया आज [illegible]ना ही दूध बच्चे को पिला दीजियगा...."

"हटोजी !...." वे हँसती बोलीं—"मुझे तो दूध उतरता ही नहीं...."

लीजिये साहब ! कितनी विचित्र बात है। देवीजी के पास दूध देनेवाले दो-दो यन्त्र मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, फिर भी दूध की

इतनी कमी। या अल्लाह ! मै मुँह बाये खड़ा ही रहा और देवी जी सटाक् से दरवाजा बन्द करके अन्तर्ध्यान हो गईं।

कपि जूझे !

कहते हैं कि दो बिल्लियाँ कहीं से रोटी का टुकड़ा पा गईं और उसके बँटवारे के लिए उन दोनों में झगड़ा देख होने लगा ! एक कपि जी उनका यह झगड़ा देख रहे थे। सो सन्न से 'दाल-भात में मूसलचन्द' होकर बीच में आ टपके और लगे तराजू से तौल-तौल कर दोनों का हिस्सा बाँटने। कपि जी थे चतुर, सो सारी की सारी रोटी उनके उदर में जा पड़ी और दोनों देवियाँ [यानी बिल्लियाँ] एक दूसरे का मुँह ताकती रह गईं। इसीलिये अपने नाना बुजुर्ग कहा करते थे कि हे नाती, आपस की फूट बड़ी बुरी होती है।

मगर दो बिल्लियों के झगड़ने का एक कपि द्वारा निपटारा होने की बात तो शायद सतयुग-त्रेता-द्वापर की है। अब इस टटके कलियुग में तो दो कपि जूझते हैं आपस में और बिल्ली उनका निपटारा करती है। बात एकदम सही है। बावन रत्ती नहीं, तो पौने बावन रत्ती जरूर। वह यों—सन्ध्याकाले दो भीम-क्षीणकाय कपि आपस में जूझ गये और बिल्ली रूपी महासम्पादक महाराज हाथ जोड़कर, घुटने टेककर, खीस निपोर कर बीच-बचाव करते ही रह गये।

झगड़ालू कपियों में एक तो थे श्रीप्रभंजन या श्री 'आँधी जी' जिन्हें चिनगारी का रोंआ-रोंआ जानता है—और दूसरे थे स्नातक साहित्याचार्य, साहित्यरत्न आदि उपाधिधारी एक खाँव-खाँवकर्त्ता कपि, जिन्हें शायद हिन्दी संसार में कोई नहीं जानता, मगर जो अपने को महान ही नहीं युग का प्रगतिशील कपि समझते हैं और कहते हैं कि उनकी रचनायें कोई क्या समझेगा, घासलेटी घी और बाँसफाटक की चाट चाटकर।

तो साहब, दोनों कपि जूझे और खूब जूझे। जबान कैंची को

भी मात दे गई और शब्द तो खटकिनियों के भाषण से लिए गये परम परिमार्जित थे। ताल ठोंककर, कमर कस कर, दाँत निकाल कर दोनों कपि अद्भुत जबानी दाँव-पेंच छोड़ने लगे।

बात यह हुई कि इन 'स्सासा' [स्नातक-साहित्याचार्य-साहित्यरत्न] महाराज ने सम्पादकजी की माँग पर अपनी तुकबन्दी चिनगारी में प्रकाशनार्थ दी, जो उन्हें खुदा के फजल से कत्तई नापसन्द आई और उन्होंने 'स्सासा' जी को सधन्यवाद वापस कर दी। इस पर 'स्सासा' जी लौटाने का कारण पूछने लगे, तो श्री कपि 'प्रभंजन' जी की शामत आ गई जो उन्होंने उस तुकबन्दी की गलतियाँ बतानी शुरू कर दीं। दुअन्नी भर के मुँह से चवन्नी भर की बातें सुनकर कपि 'स्सासा' जी क्रोधायमान हो गये और खाँव-खाँव करते हुए कपि श्री प्रभंजन की ओर दौड़े। कपि श्री प्रभंजन कुछ देर तक तो आहिस्ता-आहिस्ता बोलकर उन्हें समझाने की कोशिश करते गए परन्तु एक कपि का खाँव-खाँव देखकर दूसरे कपि को भी 'खीस-कढ़ास' लग ही जाती है तो कपि प्रभंजन जी भी अटेन्शन हो गये और लगे खीसें काढ़ने और खाँव-खाँव करने, हाथ मटकाकर।

अपनेराम भी भगवान बुद्धीय मुद्रा में एक कोने में चुपचाप शीर्षाषनाधीन थे और दोनों कपियों का वाकयुद्ध देख रहे थे कि दो कपियों में जब भाई-चारा नहीं हो सकता तो क्या खाक सुराज हुआ ! हम इसके लिए सरकार को सरासर सरसराते हैं यानी दोष देते हैं कि सुराज हो जाने पर भी वह इन कपियों की नस्ल सुधारने की ओर उचित ध्यान नहीं दे रही है ? ये कपि यदि योंही छूटे हुए रहे और इन्हें एक-दूसरे को देखकर खीस काढ़कर काटने-दौड़ाने की आजादी रही तो भारत के लिए इन कपियों का देश 'कपिस्तान' भी एक बड़ा भारी खतरा पैदा हो जायगा।

हाँ ! तो कपि 'प्रभंजन' काफी देर लड़ने के बाद श्री बिल्ली

सम्पादक जी के कहने पर शान्त हो बैठे, फिर भी श्री 'स्सासा' जी बीच में खड़े होकर गुर्रायामान होने लगते थे और अपनेराम को शक होने लगता था कि ये कपि हैं या गुर्र-गुर्र-गुर्राने वाले कुत्ते।

बात यह है कि कपि प्रभंजनजी चाहे भले ही कपि हों, मगर कपि 'स्ससा' जी तो निश्चय ही कुत्ते हैं, क्योंकि कुत्ते की तरह वे झपटते भी थे, भूँकते भी थे और गुर्र-गुर्र-गुर्राते भी थे।

अपनेराम के नाना बुजुर्ग ठीक ही कहा करते थे कि हे नाती, काने को काना मत कहो, चोर को चोर मत कहो, उल्लू को उल्लू मत कहो, नहीं तो वह बिगड़ैल बैल होकर मारने दौड़ेगा। मगर कपि प्रभंजन जी के नाना बुजुर्ग शायद इतने पहुँचे हुए नहीं थे और उन्होंने कपिजी को नसीहतें नहीं दी थीं तभी तो कपिजी ने काने को काना, उल्लू को उल्लू और गधे को गधा कह दिया और कपि 'स्सासा' जी अपनी ठीक तारीफ सुनकर गुस्सित हो उठे।

अपनेराम यहाँ यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि श्री 'स्सासा' जी का शरीरिक कम्पोजिशन कुछ विचित्र-सा है और उनमें उल्लू, कुत्ते, गधे की सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। उल्लू की आँखें बड़ी घुग्घुनुमा और 'स्सासा' जी की आँखों पर चश्मा। कुत्ते की आदत बिरादरी पर भूँकने की और 'स्सासा' भूँकने में एक कदम और आगे—गधे की आदत बोझ ढोना और 'स्सासा' जी की पीठ पर उपाधियों का बोझ। फर्क सिर्फ जरा-सा! उल्लू की जात बड़ी मूर्ख और 'स्सासा' जी पूरे 'स्सासा' यानी 'स्नातक-साहित्याचार्य-साहित्य-रत्न'। कुत्ते की दुम टेढ़ी, और 'स्सासा' जी पूरे बेदुम। गधे की चारों टाँगें जमीन पर और 'स्सासा' जी की केवल दो।

अन्त में अपनेराम इन उल्लू-कुत्ते-गधे जी यानी 'स्सासा' जी को एक निहायत नेक सलाह देंगे कि तुकबन्दी करना छोड़कर केवल उपाधियों का बोझ ढोते चलें, क्योंकि पढ़ने-पढ़ाने से या उपाधि ले लेने से किसी में तुकबन्दित्व की शक्ति नहीं आ सकती।

यह तो ईश्वरीय देन है। आप भले ही रट-रटा कर तुकबन्दी करने का कायदा कंठाग्र कर लिए हों, मगर ईश्वर ने जब आपमें यह शक्ति ठूँस-ठूँस कर भरी नहीं है तो आप खाक भी नहीं कर सकते। कपि प्रभंजन की ख्याति और तुकबन्दित्व की शक्ति को देखते हुए अपने राम ससाहस यह घोषणा कर सकते हैं कि उनके सामने अभी 'स्सासा' जी निरे गधे के बच्चे हैं, मासूम, अज्ञान और अपढ़।

गुरुजी बैठ गये !

गुरुजी से अपनेराम का मतलब गुरु गोल-वल-कर जी से नहीं, वरन उन गुरुओं से है, जो भारत की लक्ष-लक्ष पाठशालाओं में कोटि-कोटि छात्रों को हाथ की पतली डंडी से धमकाते हुए कहते हैं—"पढ़ो बच्चों—कखगघङ ..." यानी जिन्होंने हम-आपको 'लिख लोढ़ा-पढ़ पत्थर' की श्रेणी से निकाल कर सज्ञानों की गोष्ठी में घुसाया है।

तो अपनेराम ऐसे ही पूज्य गुरुओं की बात कहने जा रहे हैं। इसमें से 'यूपीय' गुरु लोग आजकल बैठ गये हैं। यों तो बच्चों को बेंत से दण्डित करने के लिये ये रोज ही उठते-बैठते थे, परन्तु इस बार तो ये लोग कसम खाकर बैठ गये हैं, कि खुदा कसम ! बगैर माँग पूरी कराये हम उठेंगे ही नहीं और सारे बेवकूफ लड़के जिंदगी भर तक गुल्ली डण्डा ही खेलते रहेंगे।

गुरुओं की यह हड़ताल कोई बेजा नहीं। आजकल के अभाव के महारोग में पिसते हुओं में से ये भी बेचारे हैं। हम—आपको विद्या दें और स्वयं भूखों मरें ! लाखों को धोती पहनना सिखायें और स्वयं नंगे रहें। करोड़ों को वकील-वैरिस्टर-डाक्टर-मिनिस्टर बनायें और स्वयं गुरु के 'गुड़' ही रह जायँ—आप ही बताइये, यह कहाँ का न्याय है ?

यह सच है कि इस समय सरकार के आगे इतनी भीषण समस्यायें हैं, जिनके आगे गुरुओं की यह माँग बहुत छोटी है।

उनकी हड़ताल का असर छात्रों पर भी पड़ सकता है, खलबली मच सकती है।

मगर सरकार है, तो उसमें सभी समस्याओं एवं माँगों का शीघ्र निपटारा करने की तीव्र शक्ति भी होनी चाहिये। जनता पिस रही है, तड़प रही है, तो वह चिल्लायेगी ही और जोर-जोर से भूँक कर सरकार को ही दोष देगी। इन गुरुओं को इतनी कम तनख्वाह मिलती है कि इस सड़े जमाने में एक आदमी का भी पेट मुश्किल से भर सके, तो फिर परिवार के अन्य जीव क्या करेंगे? भूखों मरेंगे नऽ।

सरकार जनता को धैर्य का उपदेश देती है। परन्तु सरकार के ध्वजधारक आजकल कितने पानी में हैं? सोचिये, समझिये। शिक्षकों की हड़ताल बुरी है, परन्तु क्या शिक्षा-मंत्री का कार रखना, लम्बी तनख्वाह लेना बुरा नहीं है? मिनिस्टरों का स्पेशल रेलगाड़ियों में, हवाईजहाजों में सफर क्या कहता है? हम दूसरों को लम्बा-तगड़ा उपदेश दे सकते हैं, परन्तु उस पर स्वयं-अमल क्यों नहीं करते?

यदि मन्त्रीगण त्याग और तपस्या से काम लें, तो जनता पर कितना बड़ा असर पड़े। पहले यही लोग निःशुल्क कांग्रेस का कार्य करते थे, आज इन्हें इतनी मोटी-मोटी तनख्वाहें क्यों दी जा रही हैं? क्या ये लोग १०-५ बरस तक अवैतनिक कार्य नहीं कर सकते कि इस आर्थिक संकट में कुछ मदद मिले? देश का कार्य नङ्गा भूखा रहकर किया जाता है, कार पर चढ़कर नहीं? यदि ऊँचे दरजे के अफसरान ऐश की जिन्दगी बिताते हैं, तो नीचे के कार-बरदार क्या हड़ताल भी नहीं कर सकते?

पहले तो सरकार गुरुओं के इस हड़ताल की बात सुनकर बौखला उठी थी और शायद अपना सुपरिचित! दमन-दण्ड भी चलाना चाहती थी। मगर अब सुनने में आया है कि शिरी शिक्षा मन्त्री जी का आसन डोल गया है और वे भी जोरदार शब्दों में इन गुरुओं की तरफदारी करने लगे हैं। भाई! क्यों न हो, आखिर

थे भी तो किसी गुरु के 'गुड़' से ही 'चीनी' बने हैं।

अब अपनेराम की शुभ सल्लाह यही है कि हे सरकार सुन्दरी ! जरा आँख खोलकर हमारी दशा देखो, कान-कपाट खोल कर हमारी कराह सुनो—और हे गुरु लोग ! शिक्षा मन्त्री के कानों पर तुम्हारे पुकार की जूँ रेंगने लगी है और वे खुजलाने को व्यग्र हो उठे हैं। सो हे गुड़वान गुरु-गण धैर्य धरो। तुम्हारी रक्षा होगी, शिक्षा-मन्त्री द्वारा। तुम जो इस कदर 'गरियारे' बैल की तरह बैठ गये, वह आसन त्याग कर उठो और बच्चों के हाथ से गुल्ली-डण्डा छीनकर उन्हें स्लेट-पेन्सिल पकड़ाओ।

प्रिय पाठक गण ! आप भी अपने राम को कोसने लगे होंगे कि कभी मैं सरकार की प्रशंसा करता हूँ और कभी उसे 'लतिआता' हूँ। मगर भाई क्या करूँ ? अपनी आदत से लाचार हूँ। श्री चमगादड हूँ नऽ ! सो कभी इधर कभी उधर उड़ना ही पड़ता है। दूसरी बात यह है कि जिस तरह 'घरनी' को कभी-कभी लतिआना आवश्यक हो जाता है, उसी तरह यह सरकार सुन्दरी अगर लतिआई न जाय तो सर पर चढ़ कर हाथ मटकाने लगेगी।

धायं-धायं किट !

आपने ऐसा विचित्र शब्द कभी न सुना होगा, न तो किसी शब्द कोष में टटोला होगा। 'टाँय-टाँय फिस' तो आप जानते ही होंगे और शायद सुहागरात को 'टाँय-टाँय-फिस' हुए भी हों।

तो यह 'धाँय-धाँय-किट' भी उसी 'टाँय-टाँय-फिस' का प्रतिरूप है। फर्क केवल यह है कि यह 'धायँ, धायँ-किट' केवल रणक्षेत्र के लिए व्यवहृत होता है, जहाँ धायँ-धायँ गोलियाँ चलती हों और कारतूस समाप्त हो जाने पर रायफलें केवल 'किट' करके रह जाती हों। समझे न आप ? धायँ-धायँ किट माने टाँय-टाँय फिस याने लडाई ठप्प !

"आप पूछेंगे, कहाँ की लडाई 'ठप्प-बन्द-स्टाप' हो गई तो अपनेराम निहायत इत्मीनान से फरमायेंगे—"हें हें जी काश्मीर की...."

तो काश्मीर की लड़ाई 'धांय-धांय-किट' हो गई, ठीक पहली जनवरी ४९ के लगते ही। कुछ तो सुरक्षा परिषद का आदेश, कुछ लड़ते-लड़ते की थकान—सो पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के सिपहसालारेजंगों ने लड़ाई को धायँ-धायँ-किट कर देने की आज्ञा दे दी।

अब सवाल यह उठा है काश्मीर की गोरो-गोरी जनता के दिमाग में कि काश्मीर हिन्दुस्तान का आँचल पकड़े या पाकिस्तान की सलवार, इसके लिए निष्पक्ष मतगणना होगी। देखना है कि इस 'गणना' में कितनी कठिनाइयाँ सामने आती हैं। अल्लाह करे। ये गर्दिश के दिन खुशोखुर्रम गुजर जायँ।

अपनेराम को बेहद हर्ष है कि काश्मीर की घाटियों में धायँ-धायँ-किट का आर्डर हुआ और अब आशा है कि शीघ्र ही काश्मीर की जनता स्वच्छ हवा में साँस ले सकेगी। अब तक तो बेचारे बारूद की गन्ध सूँघते-सूँघते परेशान हो गये थे। अपनेराम काश्मीरी नर-नारियों को गले से लगाने के लिये बेहद बेताबो-बेकरार हैं।

फलदरसनी !

अपनेराम के सिर पर दो नई आफतें। एक तो काशी में हर साल प्रदर्शनी का लगना और दूसरा अपनी देवी जी यानी चमगादड़िनजी का 'छैलाना' यानी ...ात् हठ करना। दोनों आफतें एक से एक बढ़ कर। पहली आफत प्रदर्शनी, केवल प्रदर्शनी ही नहीं 'कांग्रेस स्वदेशी प्रदर्शनी' या स्पष्ट शब्दों में तो यह कि इस जालिम जमाने मे मन के अट्टहास्य का प्रदर्शन-गृह और गरीबों की तड़पन का उपहास्य-केन्द्र। देश भूख से सन्तप्त हो, परन्तु प्रदर्शनी जरूर लगे, रंग-बिरंगी दूकानें आवें और उन दूकानों में इन्द्र-धनुषीय तितलियों-भंवरों का पदार्पण हो। होहल्ला मचे, कला भवन के कंगूरे पर लगे हुए लाउड-स्पीकरों द्वारा जनता को सिनेमा के अश्लीलतम गाने सुनाये जायँ, आतिशबाजी से आसमान छूने

का प्रयत्न किया जाय, कुछ लुच्चे, कुछ लफंगे, कुछ सज्जन, कुछ बाँकी-तिरछी टोपी वालों का जमाव हो, आपही बतायें यह सब क्या है ? दूसरी आफत 'छैलाता' यानी हठात् हठ, सो भी अपनी देवी जी का, जिनके साथ अपनेराम को पूरी रात और आधा दिन तक रहना पड़ता है।

बोलीं—"फलदरसनी आ गयल हा। हम जरूर देखब...."

अपनेराम संजीदगी से बोले—"अरे छोड़ो भी फलदरसनी की बात ! वह कौन-सा कटहल का फल है, जो तुम्हारे जाये वगैर टूटेगा ही नहीं...."

"तुहरे बहाना बड़ आवलाऽ... आजै साँझ के चलल जाई, समुझला की नाहीं ..."

"समुझ गइलीं...."अपनेराम बोले-"आज उड़ते-उड़ते लिखना था, मगर खैर..."

"लोग कहेलेन कि तू उड़त-उड़त लिख लेला—मोरे समुझ में ई बात नाहीं आवलाऽ कि उड़त-उड़त कैसे लिख जाला...."

"तुम क्या खाक समझोगी....चलो, फलदर्शनी देख लो शाम को...."

तो साहब, शाम को, यानी रात को आठ वजे हमारा जोड़ा दो दुअन्नी फेंककर बीच प्रदर्शनी में आ गया।

दोनों जन घूम-घूमकर फलदर्शनी देखने लगे। एक बिसातखाने की दूकान के सामने आकर देवी जी अड़ियल घोड़ी की तरह 'डेड-स्टाप' हो गईं। बोलीं—"हमें ऊ सब चीज देवाय दिहल जाय जउन कुँवरानी बहिन आयल रहलीं त अपने बरे होंठे-मोहें-नहें में लगाये रहलीं...."

अपनेराम जरा धीरे से बिगड़े—"देखो देवी जी ! उन सब चीजों को अपटूडेट स्त्रियाँ लगाती हैं, तुम्हारे जैसी कोकिलायें नहीं।...."

"फिन बहाना बनावै लगलै नऽ....हमें देवाय दिहल जाय....

हाँ नहीं तऽ !"

लाचार अपनेराम को दूकानदार के सामने अपनी जबान शुद्ध हिन्दी में लड़ानी पड़ी—'देखिये महाशय ! आपके पास हिम है, यानी बरफ ?"

"नहीं !...."

"चमकन है ?"

"नहीं...."

"और मुखचूरा है ?

"जी नहीं...."

"लोम रोगन ?"

"यह भी नहीं है...."

"नख-लालिमा ?"

"नो सर !...."

"और अधर-लकुटी यानी होंठ की लड़की है ?"

"महाशय....!"—दूकानदार तैश में आकर बोला—"आप पागल तो नहीं है ?"

"जी कत्तई नहीं..." अपनेराम संयत स्वर में बोले—"मेरा नाम श्री चमगादड़ है और मैं 'चिनगारी' का स्तम्भकारक हूँ यानी स्तम्भनकारक नहीं....समझे आप ! शायद आपने मेरी भाषा समझी नहीं। मुझे हिन्दी से प्रेम है, अतः सुशुद्ध हिन्दी में मैंने अपनी माँग आपके समक्ष पेश की। अब यदि आज्ञा हो तो अँग्रेजी में ही समझा दूँ !...."

"जी हाँ ! बड़ी मेहरबानी होगी...."

"देखिये ! हिम यानी बरफ माने स्नो, यानी हिमानी-तिब्बती-अफगान कोई भी स्नो....चमकन माने ब्रिलियंटाइन....मुखचूरा माने फेश पाउडर....लोमरोगन माने हेयर ऑयल . नख लालिमा माने नेल पालिश यानी क्यूटेक्स... और अधर-लकुटी माने होंठ की लकड़ी यानी लिपिस्टिक....समझ गये ?...."

"धन्यवाद ! ..." कहकर दूकानदार ने सारी चीजें निकालकर सामने रख दी।

अपनेराम सोचने लगे कि ये उल्लू दूकानदार पता नहीं कब हिन्दी सीखेंगे ? देवीजी को फलदर्शन का फल मिल गया और लगभग दो घण्टे तक इधर-उधर घूमकर हम दोनों वापस आये।

अब जरा फलदर्शन महात्म्य सुनिये—

ई फलदरसन जे-जे करहीं।
ते नर कबहुँ नरक ना परहीं॥
नारी जे फल देखन जाहीं।
राखि प्रेम श्रद्धा मन माहीं॥
तिनहिं कबहुँ नहीं ब्यापै दुखडा।
चमकत रहै चन्द सा मुखड़ा॥
निखरै छवि रति लाजन हारी।
पति-देवर की होय पियारी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
फलदरसन की माया।
जन्मत मरत लाख तन पावे,
नहीं समझ नर पाया॥
इतिश्रीफलदर्शनमहात्म्यम् !

कडुवा-कडुवा थू !

आज हमारे नेता, जो सौभाग्यवश देश के शासनकर्त्ता भी हैं, मीठी-मीठी गप्पें हाँकने और कडुवा-कडुवा थूकने में 'नम्बर-एक' हैं। बात तो इतनी मीठी करेंगे कि वल्लाह, कुर्बान जाऊँ और जब नीम के धुएँ जैसी कड़वाहट उगलने लगेंगे तो खुदा की पनाह !

यह 'मीठी-मीठी गप्प' और कडुवा-कडुवा 'थू' का फारमूला भी कुछ अजीब-सा है। हम पहले 'मीठी-मीठी गप्प' के रूप में नेताओं की मीठी-मीठी बातों का उल्लेख करेंगे, फिर 'कडुवा-कडुवा थू' के

रूप में इनके कारनामों पर गौर फरमायेंगे। तो यह रही 'मीठी गप्प....' वजीरेआजम यू० पी० पं० गोविन्दबल्लभ पन्त ने बरौत (मेरठ) के भाषण में स्पष्ट शब्दों में कहा—"किसान देश के स्वामी हैं।"

सुना आपने ? न सुना हो तो फिर सुन लीजिये कि देश पर राज्य करते हैं मिनिस्टर लोग, जो शायद हल की मुठिया भी पकड़ना नहीं जानते, और फुसलाने के लिए कहा जाता है कि किसान देश के स्वामी हैं। हो सकता है कि भोले-भाले किसान इस प्रशंसा से फूलकर कुप्पायमान हो जायँ और जी तोड़ कर, जान देकर 'अधिक अन्न उपजाओ' की स्कीम पूरी करने लगें। इन्हीं के परिश्रम पर तो देश का पेट भरेगा और मंत्रियों को नून-तेल की चिन्ता से मुक्ति मिलेगी।

भाई! मीठी-मीठी गप्प होती है, मगर झूठी-मूठी गप्प मैंने नहीं सुनी। आज भी प्रान्त में जमींदारों का गुट अकड़ायमान हो रहा है, किसान उसी तरह बैल की जिन्दगी जीते और कुत्ते की मौत मरते हैं। फिर यह झूठी गप्प नहीं तो क्या है ?

किसान राज्य के स्वामी हैं, मगर आश्चर्य तो यह है कि स्वयं उनकी जोती-बोई जाती हुई जमीन पर भी उनका अधिकार नहीं। अपनेराम की रायशरीफ में तो प्रधान-मन्त्री का यह कहना कि किसान राज्य के स्वामी हैं, उनकी गरीबी और उनकी वर्तमान अवस्था का उपहास करना है।

मीठी-मीठी गप्पों से जनता की भावुकता को जागृत करना क्या अगले चुनाव को पृष्ठ-भूमि का आरोपण नहीं है ?

आज देश के अधिकांश किसान शहरों से दूर मैली-कुचैली बस्तियों में भिनभिना रहे हैं। शहर के सेठों के लिए राशन की दूकानें हैं और अन्न पैदा करने वाले दीन-दुखी किसानों के लिए कपड़े-लत्ते का सर्वदा अभाव। शहर से दूर गाँवों में जाकर देखिये—जमींदारों के लात-घूँसे, पुलिस का अनाचार, सूदखोर

सेठों की बड़ी-बड़ी तोंदें और इन सबके बीच सिसकता रोता अभागा किसान ! कौन सुने उसकी ? गाँवों तक कार नहीं जा सकती, स्पेशल ट्रेनें, हवाई जहाज भी नहीं जा सकते, तो हमारे नेता वहाँ तक पहुँचें कैसे ? अब जरा 'कड़ुआ-कड़ुआ थू' भी सुनिए।

मिर्जापुर के महुवरिया ग्राम के किसानों की लगभग २२॥ बीघे जमीन सरकार ने स्कूल बनवाने के लिए जबरदस्ती 'नोच' ली, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गीदड़ मरे बैल का मांस नोचते है। बेचारे किसान मुर्दा-तुल्य क्या करें। धन के जूतों के आगे सबका मुँह बन्द ! शहर में कई जमीनें, मगर स्कूल के लिए तो चाहिए फसल उगलने वाली जमीन, मुरदों के शरीर का मांस नोच लो वे बोलें तक नहीं।

एक ओर किसान राज्य के स्वामी और दूसरी ओर 'मरे बैल की मांस-नोचन-क्रिया'—एक ओर 'अधिक अन्न उपजाओ' की स्कीम और दूसरी ओर अधिक अन्न उपजाने वाली जमीन पर स्कूल बनवाने का कृत्य। है न कड़ुवा-कड़ुवा थू ?

किसानों ने किसका दरवाजा नहीं खटखटाया मगर बहरे कान सुनें तो कैसे ? रो-सिसक कर बेचारे रह गये ! वह जमीन जो स्कूल बनाने के लिए ली गई है, अत्यन्त उपजाऊ जमीन है और किसानों की जीविका का एकमात्र सहारा है। सरकार उनकी जमीन छीनकर, उन्हें थोड़ा-सा मुआवजा देकर उनकी जिन्दगी नष्ट कर रही है। उनके बाल-बच्चे क्या करेंगे ? वे कहाँ जाकर मिनिस्टरी करेंगे ? कौन जीविका देगा ? उन्हें कौन राज्य का स्वामी बनायेगा ?

अन्न की समस्या पहले और पढ़ने की समस्या बाद में—इसे कौन समझाये ? सरकार तो मांस नोचना जानती है ! वह किसी का दुःख-दर्द क्या समझेगी ? नहीं तो शहर की अन्य जमीनों के अलावा उसी जमीन के आस-पास ही पचीसों बीघे ऐसी जमीन है जो हर साल बरसात में पानी से भर जाती है। क्यों नहीं सरकार उस जमीन को ऊँची करा उसी पर स्कूल बनवाती ?

मगर इसमें तो रुपये खर्च होंगे न। सरकार के पास रुपया

कहाँ, केवल गरीबों का गला घोंटने वाले काले हाथ हैं। दूसरी बात यह कि एक छोटे-से हाई स्कूल के लिए साढे बाईस बीघे जमीन क्या थोड़ी होती है? क्या एक बीघे में चार मंजिली, पाँच मंजिली बिल्डिङ्ग स्कूल के लिए सरकार नहीं बनवा सकती? क्या सरकार यह बता सकती है कि शहर के किस हाई स्कूल या कालेज की बिल्डिङ्ग साढ़े बाईस बीघे में है?

जाने दीजिए! अपनेराम तो उड़ने वाले जीव ठहरे, स्कूल के लिए चाहे बिल्डिङ्ग बने या किला, हमें क्या लेना-देना है? यह तो चिनगारी कार्यालय के पास रहने वाले किसानों का बेमौत मरना देख अपनेराम को गुस्सा आया, वर्ना 'कोउ नृप होई हमें का हानि'!

यहाँ हम चन्द लाईनों में 'आगरा नागरी प्रचारिणी सभा' में दिए गये राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त के भाषण का अंश उद्धृत कर देते हैं, शासकों की आँख खोलने के अभिप्रायार्थ—

"जिन्होंने देश के नाम पर एक बार भी कारागार के दर्शन कर लिए, वे किस पद के पाने की योग्यता नहीं रखते, मानों भ्रष्ट होने के लिए ही लोगों ने तप किया था। कलक्टर से एक लाइसेंस दिलाने का मेहनताना चार-चार पाँच-पाँच सौ रुपया माँगना भी हमारे वकील बहुत नहीं समझते। सब बहती गङ्गा में हाथ धो लेना चाहते हैं। भगवान जाने गङ्गा में या बैतरणी में। सत्ता के लिये आपस में खींच-तानी हो रही है, अभाव में भी उत्पादन के विरुद्ध हड़तालों का भय, एक दूसरे पर आरोप, और न जाने क्या-क्या। विषम है हमारे-देश की दशा। गाँधीजी को फूटी आँखों भी न देख सकने वाले आज अपने स्वार्थ-साधन के लिये उनका नाम लेने नहीं थकते। शैतान भी जैसे धर्म-शास्त्र का प्रमाण खोजता है।"

श्रीराष्ट्र कवेभ्यो नमः।

परचे बाहर !*

अपनेराम जब पढ़ते थे तो कम्बख्त परचे सरकारी पैकेट की सील तोड़कर कभी बाहर झाँकते तक न थे। बेचारे परचे भी क्या करते ? गुलामी के दिन थे और गोरी संगीनें हमेशा तनी रहती थीं। जब इन सङ्गीनों के डर से देश की वायु में दहाड़ने वाले शेरनुमा नेता भी भेंड़ बनकर चुपचाप जेलों के अन्दर बन्द हो जाते थे, तो इन निरीह परचों की क्या हस्ती ? मगर स्वराज्य होते ही हमारे नेता तो भीगी बिल्ली का जामा छोड़कर बुलडाग बन ही गये थे, अब कागजी परचों को भी बाहर की हवा खाने को सूझी। कहने लगे—''अब हम स्वतन्त्र हैं। हम बाहर निकल कर विद्यार्थियों के हाथ दो रुपये से लेकर पचास रुपये तक में बिकेंगे।''

तो साहब ! अपना-अपना शरीर बेचने वालों का रास्ता कौन रोक सका है ? जिस तरह छिनाल गृहिणी घर की लजा का बन्धन त्याग कर रात के अन्धेरे में अपने प्रेमी से जा मिलती है, उसी तरह ये इम्तहानी परचे भी सरकारी सील तोड़कर सड़ाक् से 'आउट' हो गये। यानी बाहर आ कूदे। विद्यार्थी उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए। किसी ने अपनी प्रेमिका द्वारा दी हुई अँगूठी बेंचकर उन्हें खरीदा तो किसी ने बाप की छड़ी का डर न करके घड़ी ही बेच डाली। सोचा अब तो अव्वल डिवीजन रखा ही है। मगर जनाब ! मुँह की दुर्गन्ध छिपती नहीं। छिप भी कैसे सकती जब कि इतनी लम्बी जवान रखी है मुख में ! दो ही दिन में सारा राज 'आऊट' हो गया और परीक्षा 'ठप' कर दी गई। रोते-रोते विद्यार्थी बेचारे खिसियानी बिल्ली बन कर 'बोर्ड' का खम्भा नोचने लगे। प्रश्नपत्रों के 'आऊट' होने में हाथ चाहे जिसका हो, यह निश्चय है कि यह हाथ राष्ट्र का परम शत्रु है। सरकार को उसे जड़ से

---

* १९४९ में यू० पी० बोर्ड का परचा आउट हुआ था।

काट देना चाहिये। अपनेराम सुमुखी सरकार को एक लपलपाता हथियार वी० पी० से भेंट करने वाले हैं, जिससे वह इन राष्ट्र-द्रोहियों के हाथ कचाकच काट सके।

केले खाओ, केले जी !

बरसात का जमाना भी क्या खूब कि मेढकों की पैंदाइश अपनी भरपूर जवानी पर। जिधर नजर डालिये, बस मेढक। तौबा कीजिये इस इफरात पैदाइश पर। इन पानीदार जानवरों की आवाज़ भी मधुर, इतनी स्वीट कि बस कान में ऊँगली डाले, सुनने की चाह न रहने पर भी, सुनते रहिए।

और इन लम्बे-तगड़े 'एक-वालिश्ती' केलों के मारे तो और भी नाक में दम है। ये केले कम्बख्त तो पैंदाइश में इस साल मासूम मेढकों से भी बाजी मार ले गये हैं। शहर में जिधर से निकलिये 'कनक छुरी सी कामिनी' कुजड़िनों की दूकान पर ढेर के ढेर रखे देख लीजिये, छोटे-बड़े, हरे-पीले। इन केलों के बदन में मिठास इतनी ज्यादा कि देखकर मुँह में स्वच्छ गङ्गाजल आ जाय। बस पैसे फेंकिये, दो-चार लीजिये, छोलिये और खड़ा-खड़ा ही खा जाइये।

कितना मजा, कितना स्वाद—पूछिये मत। आप में से प्रायः सभी ने केले खाये होंगे, फिर तो अपनेराम का कुछ कहना मानो अन्धे को दीपक दिखाना है। तो साहब, इन केलों का मिठास पर भैया जवाहर भी इस तरह से फिदा हैं जैसे कानी कामिनी पर लँगड़ा लबार। यह अपनेराम की एकदम नई-नवेली खोज है।

भैया जवाहर सल्तनते हिन्द के वजीरे-आजम ठहरे, सो उनकी गति न्यारी, अदायें प्यारी। इस की साल की बरसात अपने भैया जवाहर केले खाकर ही गुजार रहे हैं। क्यों न हो, केले का स्वाद मधुर और केले बेचती हुई खटकिनों की यह बोली 'केले खाओ, केले जी, एक-एक अधेले जी' तो और भी जानमारू'। अपने नाना-बुजुर्ग कभी-कभी बरसात की रात में यह कजरी गाया करते थे

'दिल से खटक गइल खटकिनियाँ जब से लगल सवनवाँ ना' मगर शायद नाना बुजुर्ग की जवानी में खटकिनें केले नहीं बेचा करती थीं, वरना यह खटकौवल कभी न होती।

खैर! अपनेराम को इस झमेले में नहीं पड़ना है। कहना तो सिर्फ यह है कि अपने भैया जवाहर आजकल केले ही खाते हैं और चाहते हैं कि उनके देश का बच्चा-बच्चा तक केले से गुजर करने लग जाय।

भाई! इस समय देश की खाद्य समस्या औरतों की शृङ्गार समस्या से भी बढ़ गई है। चारों ओर हाहाकार। देखकर भैया जवाहर का हौसला पस्त हो गया है। इस बार के अपने हवाई भाषण में भैया जवाहर ने हिन्दुस्तानी बोली में अपने देश के मेढकों के नाम जो सन्देश दिया है, वह बड़े मार्के का और निहायत हसीन है। आपने फर्माया कि देश की खाद्य समस्या का हल निकालने के लिए प्रत्येक देशवासी को हल चलाना जरूरी है और गेहूँ-चावल आदि नेताओं के खाने के पदार्थों को छोड़कर आलू, चुकन्दर, केले तथा शकरकन्द खाना निहायत आवश्यक है।

भैया जवाहर ने 'आलू-केला-शकरकन्द-चुकन्दर, आदि के खाने की बात कई बार दुहराई और इस तरह ने जोर देकर कि अपनेराम का सारा दिमाग 'आलू-चुकन्दर-केलामय' हो गया। चारों तरफ अपनेराम की आँखों को 'आलू-केला-चुकन्दर' ही नजर आने लगे। अपने रेड़ियो को छूकर देखा कि कहीं यह जीता-जागता बोलता यन्त्र भी आलू-केले जैसे किसी खाद्य-पदार्थ में तो नहीं बदल गया। मगर खैरियत हुई कि बेचारा रेडियो हमारे दिमागी फितूर से बचा रह गया था। इस हवाई भाषण के दौरान में अपने भैया जवाहर ने कई-कई मार्के की होनी, अनहोनी बातें बताईं। पहली तो यही 'आलू-केले' खाने वाली और दूसरी यह कि जिनके पास खेत नहीं हैं, वे भी खेती कर सकते हैं। आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि बिना खेत के खेती कैसे हो सकती है?

सब कुछ सम्भव है जनाब ! आप आसमान पर खेती कीजिये, अपने सर की लम्बी-लम्बी घासों को कटवा कर उसे खेत बनवा डालिये, अपनी नाक में हल चलवाइये, अपनी गमलेनुमा आँखों में थोड़ी-सी मिट्टी डालकर उनमें केले का पेड़ लगाइये। समझे ?... मगर यह सब तो अपनेराम का सुझाव है। अपने भैया जवाहर ने सुझाया है कि आप बक्स में खेती कीजिये। यानी बक्स में से कपड़े-लत्ते निकाल कर खूँटी पर टाँग दीजिये और बेचारे बक्स को खेत बनाकर उसमें गल्ला उगाइये। देश तबाह हो रहा है तो क्या आपका इतना फर्ज भी नहीं। आप तो उन नारियों से भी गये-बीते हैं, जो देश पर अपत्ति आने पर अपना 'जौहर' दिखाती थीं।

तीसरी बात जो भैया जवाहर ने कही वह यह कि आज कल मैला सबसे कीमती चीज है—देखिये साहब, आप नाक में कपड़ा ठूँसकर मुँह से थू-थू करने लगे। यह आदत आपकी बड़ी खराब है। अपने फायदे की बात भी आपको बदबूदार मामूली देती है। शर्म की बात है। आपका मैला वास्तव में इस समय देश के लिए बड़ा कीमती है। आपको चाहिए कि इस कीमती पदार्थ को इकट्ठा करते चलें और बाद को अच्छे भाव में किसानों के हाथ बेच दें। बड़ा अच्छा रोजगार होगा। इतना अच्छा अवसर देश की सेवा के लिए दूसरा न मिलेगा !

इस सिलसिले में भैया जवाहर ने बताया कि 'मैला' खेत के लिये सोना है। लीजिये जनाब ! वह पदार्थ, जिसे आप उपेक्षा से शरीर से निकाल बाहर करते हैं, वह बहुमूल्य वस्तु यदि सोना बन जाय तो इससे बढ़कर आश्चर्यजनक और क्या हो सकता है ? देश-भक्तों को चाहिये कि इस अवसर पर अपना घर सोने से पाट लें।

चौथी बात, जो भैया जवाहर ने बताई, वह यह कि राजपूताना का रेगिस्तान अब पानी-पानी होता जा रहा है और अब उसमें गेहूँ की फसल होने लगेगी। आपको विश्वास नहीं हो रहा है शायद, मगर भैया जवाहर की जबान से अविश्वासनीय बात

निकल ही कैसे सकती है ? भैया जवाहर का यह भाषण सभी दृष्टि से बड़ा मजेदार रहा। केवल मैले की बात कहने के वक्त ही थोड़ी सी बदबू फैली थी। इस भाषण के दौरान में अपने भैया जी कई बार खाँसे और कई बार नाक सुड़का। अपने नाना बुजुर्ग कहा करते थे कि मेढकी को ही जुकाम होता है, मगर अब मालूम हुआ कि अपने नेताओं-शासकों को भी यह जुकाम होने लगा है आजकल।

भाई ! चाहे जितना कटाक्ष कर लो मगर यह सच है कि भैया जवाहर के भाषण का एक-एक शब्द मार्के का और सुझाव का था। आप मानें या न मानें। देश में विपत्ति के बादल मँडरा रहे हों, ऐसे समय यदि आप हँसकर बिजली गिरायें तो बड़ा बुरा है। भैया जवाहर हम सबके 'अपने' हैं और उनकी एक-एक आज्ञा का पालन करना हमारा 'आँख-मूदीय' और 'काँख-कूबीय' फर्ज है।

चपटा चावल !

अपनेराम इस दावतों से डरते हैं। कारण यह है कि अपने मुँह की दाहिनी तरफ का जबड़ा आजकल बड़ा खुरापाती हो गया है। मुँह में ग्रास (कौर साहब ! अंग्रेजी घास नहीं) रखा नहीं कि हरामजादा खटाखट पिस्टन चलाने लगता है। दाँत पर दाँत बैठते नहीं और जबड़ा साहब क्रोध से खट-खट की आवाज मारने लगते हैं।

मगर साहब उस दिन अपनेराम फँस ही गये एक मामूली-सी नाश्तेनुमा दावत में। बात यह हुई कि अपने एक दोस्त की हमशीरा (याने बहन, चीनी का सीरा नहीं) साहबा ने अपनेराम को कुछ इस तरह से याद फर्माया कि अपने को उनके दर्शनार्थ जाना ही पड़ा। साथ में एक मित्र जी भी थे। वह स्वागत हुआ साहब कि उसके आगे नेताओं का स्वागत झख मारे। हम लोग एक कमरे में बिठाये गये। थोड़ी देर तक यों ही गप्पें लड़ती रहीं। फिर हमने इजाजत चाही तो जवाब मिला—"जरा नाश्ता तो कर लें...."

अगर साहब इस मधुर निमन्त्रण का जवाब हम 'नहीं' में देते तो हमशीरा साहबा को कितना दुख होता....और उधर कम्बख्त रिक्शावाला जवान मुर्गे की तरह बाँग दे रहा था—"बाबूजी आइये, देर हो रही है।' जान ऐसी आफत में फँसी थी कि 'लीलत उगलत पीर।"

खैर साहब! नाश्ता आया तश्तरी में, चम्मच के साथ। अपनेराम अपने जबड़े साहब की खुराफात से वाकिफ थे। हुआ भी वही। पहला कौन मुँह में रखते ही एक ओर तो कुछ मीठा-खट्टा स्वाद का मजा और दूसरी ओर जनाब जबड़ा साहब की खटाखट पिस्टन चलाने की शुरुआत। उधर मित्र साहब 'के जबड़े भी खट-खटाने शुरू हो गये, जैसे एक कुत्ते के स्वर में दूसरा भी अपनी आवाज़ मिलाने को जोर मार रहा हो। अपनेराम बोले—"यार! तुम्हारा जबड़ा भी काबू के बाहर हो गया है क्या?"

वे बोले—"नहीं यार! बात यह है कि चूड़ा ठीक से भिगोया नहीं है। अभी यह सीझा नहीं....इसीलिये दाँतों से युद्ध कर रहा है!"

"यह चूड़ा क्या है?....चूड़ी का पति या चूड़ी के टुकड़े?"

"अजी नहीं! यह चावल से बनता है। चावल उबाल कर इसे चिपटा किया जाता है।"

"तो यह चिपटा चावल है?...." अपनेराम ने कहा—"और यह दूसरी चीज क्या है, जिसका स्वाद खट्टा भी है और मीठा भी...."

"यह अमावट है....चूड़ा और अमावट दोनों बिहार से आये हैं...."

"सिर्फ थोड़ी-सी कसर रह गई दही की...." कहकर अपनेराम उठ खड़े हुए।

"देखिये, फिर आइयेगा...." दोस्त की हमशीरा साहबा ने एडवांस निमन्त्रणपत्र पेश किया।

"जरूर-जरूर ! जबड़ा ठीक होते ही अपनेराम फिर पधारेंगे...." कहकर हमारा लश्कर रवाना हो गया । उस दिन चूड़ा और जबड़ा के युद्ध में चूड़ा को विजय हुई और हमारे जबड़ा घायल होकर रात भर दर्द से कराहते रहे ।

खाकी बधाओ !

खाक माने राख और खाकी माने राखी । इस साल रक्षा-बन्धन के दिन अपनेराम बेहद बीमार रहे । बीमारी इस सिलसिले में नहीं कि जूड़ीताप, तिल्ली या ऐसा ही कोई रोग हुआ हो वरन् इस माने में कि भाड़े की बहनों और भूखभरे ब्राह्मणों की पूरी फौज ही धरना दिये बैठ गई राखी बाँधने के लिये अपनेराम के सड़े-गले घोंसले के दरवाजे पर ।

जिन बहनों को अपनेराम ने जान-अनजान में कभी जाना भी न था, वे भी भैया खाकी....माफ कीजिये....राखी बँधाओ, कहती हुई टपक पड़ीं और जिन सतयुगी ब्राह्मणों को कभी हमारे नाना बुजुर्ग ने पानी भी न पिलाया था, वे पीढ़ी के पुरोहित बन दौड़ पड़े ।

खाकी....चच....राखी बाँधने का यह पुनीत पर्व आज भिखमङ्गों की दुआ से छीछालेदरीय हो रहा है । इस सिलसिले में मैं अपने 'प्रभूजी' की बात भी बता ही दूँ । अपने प्रभूजी एक चालीस शाला-सीकिया बालब्रह्मचारी-ब्राह्मण हैं । संस्कृत तो आपकी ऊँगलियों के पोर-पोर पर नाचती है जो है शो । कभी-कभी यह श्लोक—

"अहो मृगाक्षी तरुणो रुणी-रुणी
कटक विशाला जघन घना-घना
कुचौ त पीनौ कठिनौ ठिनौ-ठिनौ
उत्तिष्ठ कान्ते रजनी जगामा ।"

इस तरह धड़ल्ले के साथ पढ़ते हैं और अपनी कंकड़ीली ऊँगलियों को ऐसा नचाते हैं कि हाय-हाय।

सो इन 'प्रभुजी' ने खाकी बन्धन के दिन जो मुझे खाकी बाँधी तो पूरे पाँच लेकर हो जान छोड़ी। कहने लगे—"बच्चा! दान से मान है, मान से जान है और जान से जहान है...."

अपनेराम दान-मान-जान-जहान की महिमा सुनकर चुप रह गये।

चिरई तोहै लगइबै गरवा!

कजरी, सो भी मिर्जापुरी....आह-आह! वाह-वाह! सुनिए और निगलिए। क्या शान है यहाँ के इस त्योहार की कि पूछिये मत, केवल अन्दाज कीजिए। इस साल की कजरी के जमाने में तो अपनेराम के घोंसले की घास पर अजब हंगामा रहा। कई-कई रात नींद हराम होकर रह गई। चुपचाप चारपाई पर जागता पड़ा रहा। उधर ससुरी चमगादड़िन जी अपनी सुघड़ सहेलियों के साथ 'चिरई तोहैं लगइबै गरवा जब तू मिलबू निराले में' का अलाप लेती, मस्त अठखेलियाँ करती रहतीं।

इस बार तो अपनेराम ने कसम खा ली थी (अगर लोग-बाग कसम खाते हों तो) कि इस कजरी में कभी रात को घूमने नहीं जाऊँगा। मगर जनाब, जब घर में ही लम्बा-चौड़ा मूसल रखा हो तो अपने सर की कब तक खैर रहे। सो चमगादड़िन जी के मूसल ने अपना कचूमर निकाल ही डाला। उनको कजरी गाने का बड़ा शौक मगर बनाने की, कम्पोज करने की तमीज नहीं। सो उस दिन दोपहर में उन्होंने अपना (यानी मेरा साहब) गला घर दबाया और यह कजरी बनवा के ही छोड़ी—

"तू तो छतिया उघारी काहे चललू पियारी
मनमारी हम देखत रहीला दिन भर।
तोरी पतली कमर हिलै जैसे लहर
हम खायके जहर तड़पीला दिन भर।"

इस साल इलाहाबाद रेडियो ने भी कजरी का पर्व खूब ताव के साथ मनाया। पूरे आधा घण्टे तक मिर्जापुरी कजलियों के रेकार्ड रेडियो पर मचलते-गाते रहे।

पितरपख !

खुदा न करे कि कभी किसी के बाप मरें। अगर मरना बहुत जरूरी ही हो तो कम से कम अपने सपूत-कपूतों के लिए दस-बीस हजार नकद, दो-चार मन सुनहलें-रुपहले गहने जरूर छोड़ जायँ ताकि लाड़लों को शराब-कबाब और रण्डी-मुण्डी का सामान मुहय्या करने में जरा भी दिक्कत न उठानी पड़े। अपने 'फादर' साहब तो मेरी शादी के पीछे 'बादर' होते-होते चादर ताने स्वर्ग सिधारे, आज से पाँच साल पहले। और अपनेराम जो 'सेण्ट-परसेण्ट' सपूत ठहरे तो 'पितरपख' में पिण्डदान हर साल देकर छोड़ते हैं अपने मरहूम फादर को।

क्या करें जनाब ! दुनिया की रस्में तो निभानी ही पड़ती हैं नहीं तो लोग कहने लगेंगे—पढ़-लिख क्या लिया, गोबर लेकर लीप दिया सारे खानदान को। मगर अपनेराम की 'वो' जो हैं यानी देवी चमगादड़िम जी, बस समझ लीजिए पूरी की 'पूरी' हैं। पितरपख का महत्व बेचारी क्या जानें ? एक तो अभी जवान हैं ऐसी कि अगर अपनेराम शराबी होते तो बगैर शराब के ही नशे में बुत्त रहते। दूसरे अभी उनके फादरजान एकदम 'सण्ड-मुसण्डा-यमान' है कि चाहें तो गामा को बीच अखाड़े में हाँक लगाकर ललकार दें।

तो साहब ! इस साल का अपना पितरपख इस तरह पर गुजरा कि बीवी कसम कुछ कहने की नहीं। पितरपख में दाढ़ी बनाना, तेल लगाना, कपड़े बदलना हराम। सो अपनेराम के परम सुन्दर चेहरे पर जान लीजिये कि बड़े-बड़े बालों का एक हरा-भरा बाग ही लग गया ! घास-फूसों की इतनी बहुतायत कि

अगर आप में से कुछ गदहे मुँह लगा दें तो जवानी कसम, पेट तो क्या दिमाग तक भर जाय।

मगर बीवीजान को अपना वह आकर्षक रूप पसन्द नहीं आया। कहने लगीं—"मैदान साफ रहता है तो मुँह भी लगाते बनता है, इस घासीय चेहरे पर तो केवल गदहे ही मुँह मार सकते हैं।"

देखा न आपने ! अल्लाह करे ऐसी नफरतदार बीवी सिर्फ दुश्मनों को ही नसीब हो। अब आप ही गौर कीजिये, साल भर में केवल १५ दिन अपने मरे बाप की याद में आँसू बहाना क्या पाप है ? मगर आफत तो यह कि मरे बाप को खुश कीजिये तो जिन्दा बीवी का पारा 'थर्मासीटरतोड़' चढ़ जाता है। अमावश्या के दिन गया जाने की तैयारी की, तो बीवीजान जी-जान से बम बोल उठीं—"कहाँ की तैयारी है श्रीमान की, मुँह पर यह बगीचा लेकर ?"

"जरा गया तक तशरीफ ले जाऊँगा और वहाँ के पण्डों को बगीचा सौंप आऊँगा....पिताजी को पिण्डदान भी दे दूँगा। बेचारे जिन्दे थे तो अपने हाथ की एक लिट्टी भी न खा सके, मरने पर कच्चे आटे का पिण्ड ही सही। कुछ तो संतोष होगा उन्हें स्वर्ग में...."

"देखो, यह अच्छी बात नहीं कि जो मर गया उसके लिए गया जाओ और जो जिन्दा है उसके लिये कलकत्ते जाकर एक साड़ी भी न लाओ...."

"अजी रानी जी ! तुम्हारे लिए भी गया जाया करूँगा और इतने बड़े-बड़े पिण्ड दान करूँगा कि स्वर्ग में तुम्हारा मुँह भर जायेगा...."

"हाय राम ! तुम मुझे मारना चाहते हो ?...आज ही एक पैसे की अफीम ला दो, मैं मरूँगी...."

"अजी, मरकर क्या करोगी अभी ? बाजार से जब मैं निकलूँगा तो लोग मुझे रँडुआ की उपाधि देंगे। कहेंगे, कण्ट्रोलीय खाना

नहीं मिला, तो बीवी को ही खा गया....सच, लोगों की जबान में लगाम कौन लगाये ?"

सुनते ही देवी साहिबा आँखों से 'अरेबियन-सी' बहाने लगीं। उस समय अपने नाना बुजुर्ग की एक मार्कीय बात कान में गूँज उठी—"बेटा ! औरतों के आँसू देखकर भाग खड़े होना, नहीं तो बह जाओगे..." सो अपनेराम पाँव पर सर रखकर सरपट भागे और गया जाकर ही दम छोड़ा।

गया से लौटे तो चाँद घुटी-सफाचट और मूँछें लुप्तायमान। देखकर श्रीमती जी के दिमागी थर्मामीटर का पारा १०८ पर पहुँच कर ही रुका। कहने लगीं—"गया में पिण्डदान के साथ-साथ मूँछ-दान भी कर आये। हाय राम ! हाय लक्ष्मण ! हाय सीता ! मैं यह हिजड़ों की-सी सूरत देखकर कैसे धैर्य धरूँगी !...."

"समाचार पत्रों में पढ़ा नहीं तुमने !...धीरज तो वे लोग भी धड़ाधड़ धर लेते लेते हैं जो आज कल स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री में सड़ासड़ कन्वर्ट होते जा रहे हैं। अपनेराम तो केवल चेहरे से ही थोड़ा-सा कन्वर्ट हुए हैं...."

"यदि तुम कहीं वास्तव में कन्वर्ट हो गये तो ?"

"तो तुम पुरुष बनकर मुझसे कन्सल्ट करना..."

आखिर उन्हें हँसी आ गई। वे बिजली के समान हँसीं और लगीं मेरी सपाट 'खोपड़ी' पर 'थोपड़ी' खेलने। नाई साहब के भोथरे छूरे से जो थोड़ी बहुत जान खोपड़ी में अँटक रही थी, वह भी उनकी थपथपी खाकर शेष हो गई। अब तो आनन्द ही आनन्द है कि कम से कम दो सौ साल तक अपनी खोपड़ी के खेत में बालों की घास नहीं उग सकती।

बिसरइह मति हो ?

राम बड़े थे और भरत छोटे। विजयादशमी के बिहान राम और भरत १४ वर्षों के बाद मिले तो उस 'अकेजन' का नाम पड़ा 'भरत-मिलाप' मगर यह नामकरण अपनेराम को कुछ जंचता

नहीं। राम-भरत मिलाप होता तो ठीक था। राम के बड़े होने के नाते केवल राममिलाप होना चाहिये था।

इस भरत-मिलाप का मेला प्रायः सभी जगह धूमधाम से होता है। काशी के नाटी इमली का भरत-मिलाप तो इतना प्रसिद्ध है जैसे सिन्धी होटल का मटन चाप। भीड़ तो इतनी होती है कि मनो सरसों के दाने बिखेर दीजिये और एक भी जमीन पर न जा सके। रेल-पेल तो इतनी ज्यादा कि ठेलमठेल करते रहिये मगर मजाल नहीं कि एक इन्च भी अग्रगामी या बैकगामी हो सकिये। युवतियों की संख्या इतनी अधिक कि मनचलों के हाथ दनादन सफाई पर आमादा कि युवतियों की सारी मान-मर्यादा उनकी मुट्ठी में मसल कर रह जाय।

अपनेराम ने जिन्दगी में पहली बार इरादा किया नाटी इमली के भरत-मिलाप को भर आँख काँख-कूँखकर देखने का। पूछिये मत, जानो-जिगर की कसम, मालूम होता था अपनेराम कितने ही शहीद होनेवालों के साथ 'ब्लैक होल' की सैर कर रहे हैं। सर की टोपी कई हाथ होती हुई पता नहीं कहाँ पलायन कर गई। बदन के कुरते की यह दशा कि कम्बख्त पैजामा बनकर पैर में आ पड़ा और पाजामा साहब तो फटते-फटते केवल अण्डरवियर-नुमा रह गये।

पीछे से धक्का, आगे से धक्का ... और खुदा की मार, अपनेराम की नाक झटाके के साथ एक सज्जन के मुँह में सड़ाक से पैठ गई और वे सज्जन भी शराब में इतने मस्त कि बेचारी नाक को पान का बीड़ा समझ कर कचाकच चबाने लगे। अपनेराम ने न जमीन देखी, न आसमान, केवल उन सज्जन का मुँह देखकर तड़ाक से एक तमाचे की रसीद काट दी। वे सज्जन तमाचा खाकर भड़के नहीं। सत्याग्रही लहजे में बोले—"वाह यार! तमाचा भी इतनी जोर से मारते हो कि खामखाह दस्तेनाजुक में मोच आ जाय। इतने दिनों पर मिले भी तो लगे तमाचा जड़ने। तुम्हारी सभ्यता तो आसमान तक जा पहुँची है आजकल...."

"तुमने मेरी नाक चबा डाली, सो...." अपनेराम ने उनके चेहरे को गौर से देखा तो—"अरे यार! जयपाल तुम!...."

"और नहीं तो क्या कोई दूसरा है...."

तो साहब, उस भीड़-भाड़ में, ठेलमठेल में हम दोनों दोस्तों का भी १४ वर्षीय बिछुड़न के बाद गले से लग कर मिलाप हुआ और देर तक होता रहा।

"शराब आजकल बहुत पीते हो?" अपनेराम ने पूछा।

"अमा यार! सब छूट गया, अब शराब क्या छूटेगी। तुम तो जानते ही हो, इसकी एक-एक घूँट के बल पर एक-एक पैर बढ़ाता हूँ। अब तो कभी-कभी कलेजे में इतना दर्द होने लगता है कि "नन्हा मोरा नाजुक दिल हायरे-हायरे!"

हमारे इन अजीज दोस्त साहब का नाम जयपाल है और ये हैं अपने एक दूसरे जिगरी दोस्त की हमशीरा के हसबैण्ड के साढ़ू के द्वारपाल! शराब की आदत इन्हें बुरी है और कभी-कभी ये बीड़ी सिगरेट भी खा लेते हैं। भीड़ से निकल कर हम दोनों दोस्त दशाश्वमेध पर आये। थोड़ी-सी मिठाई ली और जयपाल साहब को सौंप कर बगल के पेशाबदान में 'पिस' करने चले गये। लौट-कर आये तो देखा जयपाल साहब मिठाई के दोने सहित लापता हैं। बड़ा अचम्भा हुआ।

ऐसा तो वह कभी नहीं था। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर बैठी हुई एक अकेली भिखारिन को देखा। बूढ़ी-सी, कोढ़ से अच्छादित, बदबूदार, ५० के पार। और अपने जयपाल साहब उसी के पास बैठे हुए बड़े प्रेम से दोने में से एक-एक मिठाई निकाल कर उस भिखारिन को खिला रहे हैं और नशे में गा रहे हैं—'हमरा के राजा बिसरइह मति हो...."

अपनेराम जयपाल साहब को पकड़कर किसी तरह घर ले गये। दूसरे दिन उन्होंने जब उस भिखारिन को देखा, तो उन्हें विश्वास

ही नहीं हुआ कि शराब के नशे में उनकी आँखें इतना धोखा खा सकती हैं।

रात भर रेडियो !

खुदा ने मर्द को एक ऐसा सिड़ी जन्तु बनाया है, जो औरत के बगैर रह ही नहीं सकता। कुत्ते अगर कुतियों के पीछे पागल बनें तो इसे उनका जानवरपन कहकर सन्तोष किया जा सकता है, परन्तु जब मर्द औरत के पीछे हाथ पोंछकर पड़ जाय तो अल्लाह की पनाह ?

अपनेराम भी एक ऐसे ही सिड़ी जानवर हैं, जो अपनी चमगा-दड़िनजी को जी-जान में चाहते हैं और वे हैं कि बगैर पंख के ही हर वक्त पंखायमान हुई रहती हैं। अपने दिल के चिकने घड़े पर मेरी आँखों का पानी ठहरने ही नहीं देतीं। अब आप ही बताइये, कोई मर्द कब तक औरत को मन्दिर की देवी समय कर पूजता रहे। आखिर मर्द की भी तो एक शान होती है। अभी उस दिन की बात है—एकदम ताजी तो नहीं मगर इतनी बासी भी नहीं कि बदबूदार हो गई हो—"यह क्या पका रही हो ?"

"खिचड़ी !"

"किसके लिए ?"

"अपने लिए....तुम्हारे लिए लिट्टी बना दी है।"

"वाह वा ! अपने लिए तरल पदार्थ खिचड़ी और मेरे लिए हिमालय की टुकड़ी लिट्टी ! यह ठीक नहीं देवीजी !"

"मर्द तो कठोर चीजें ही पसन्द करते हैं।"

"मगर नारी के पेट से जन्म लेने वाले मर्द कितने कठोर हो सकते हैं !"

"तुम खाने के वक्त ही तकरार करते हो ताकि मैं रूठकर खाऊँ नहीं और राशन का गल्ला बच जाय....लो मैं जाती हूँ।

चाहे खिचड़ी खाना, चाहे लिट्टी !...."

लीजिए वह काटा ! और देवीजी कटी हुई पतङ्ग की तरह डोर तुड़ाकर सात-पाँच-बारह हो गईं। रोकना चाहा मगर बम्बई मेल के आगे लेटकर कौन अपनी जान दे। सो भाईजान मैं जोर-जोर हाथ मलता रह गया खड़ा का खड़ा और वे चलती-चलती आँखों से ओझल हो गईं। यह राज की किचकिच अपनेराम को पसन्द नहीं, मगर हिन्दू धर्म के नाते कर ही क्या सकता हूँ। अपना दिल भी इतना बेहूदा है कि एक पत्नी के रहते हुए दूसरी की ओर देखने का जी नहीं चाहता। सो 'लत्तम-घुस्सम' के बीच भी मैं एकदम अविचलित रहता हूँ। श्रीमती जी को क्या कहूँ! वे पूरी डंकिनी हैं।

डंकिनी से आप लंकिनी, पिचाशनी, भूतनी या बैतालिनी की सिस्टर न समझें, वरन् जैसे हाथी की औरत हथिनी वैसे ही 'डन्की' की देवीजी का नाम 'डन्किनी' यानी गदहिनी। जिस तरह डन्किनी जी को दिमाग नहीं होता और वे जरा-सी बात पर लात चलाने लगती हैं, उसी तरह अपनी 'जी' का भी हाल समझिये! अगर अपनेराम जरा-सा भी डंकी होते तो उनकी लातों का जवाब दना-दन दुलत्तियों से झाड़कर देते, मगर अफसोस! उनके जाने के बाद अपनेराम ने हाथ मलना छोड़कर कलेजा मलना शुरू कर दिया। घण्टों की मालिश से भी कलेजेराम का दर्द दूर न हुआ। लाचार घर से बाहर निकल कर उनकी खोज करने लगे। दिन भर तक पर फटफटाया, मगर वे तो फफफटिया मोटर पर भागी थीं कि पता ही न लगा।

थका-माँदा, लाचार शाम को लौटा और चारपाई पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा। नींद कम्बख्त की भी कोई रोक-थाम नहीं, जाने कब आ गई कि पता ही न चला। सो साहब, सोने लगे अपनेराम घोड़ा बेंचकर। रात में नींद खुली। बाहर कुत्तों के भौंकने से अपनेराम ने अन्दाजा लगाया कि बारह नहीं तो तेरह-चौदह अवश्य बजे होंगे।

खूब सन्नाटा था। लगता था, जैसे दुनिया के सारे लोग इस समय घोड़े बेंचने का रोजगार कर रहे हों। एकाएक अपनेराम डर गये। अँधेरे घर में कोई और भी था। भूतों के घर भूत क्या करने आयेंगे, सो अपनेराम ने अन्दाजा लगाया कि अपनी ढंकिनी जी लौट आई हैं। बड़ी खुशी हुई साहब! पुकारा—"क्योंजी, किधर हो? आखिर लौट आई नऽ। भला औरत कभी अपने मर्द से जुदा रह सकती है?....अच्छा, अब आओ, सो जाओ मेरे पास! देखो न, मुझे नींद भी नहीं आ रही है।"

बीच में अँधेरे में कोई छाया हिली और अपनेराम ने देख ही लिया कि वे कहाँ खड़ी हैं, आखिर चमगादड़ ठहरे नऽ! लपक कर उन्हें पकड़ लिया और चारपाई पर ला पटका, इस तरह कि गामा ने भी जेबिस्को को उस तरह पर क्या पटका होगा।

वे चुपचाप पड़ी रहीं, मगर अपनेराम तो दिन भर की बिछु-ड़न के बाद भरपूर ताव में आ गये थे। उन्हें कसकर हृदयंगम कर लिया और दो-एक चु....चु....भी। उनके होंठ और गालों पर बाल थे। शायद सर की लटें तितर-बितर होकर मुख पर आ पड़ी थीं। बड़ा संतोष हुआ साहब! जैसे किसी गरीब की चवन्नी खो जाय और वह उसे फिर से पा ले। सन्तोष हुआ तो अपनेराम ने घोड़ा बेंचने का रोजगार फिर चालू कर दिया। थोड़ी रात रहे फिर नींद खुली।

घर में अँधेरा और खड़खड़ाहट भी हो रही थी। अपनेराम जान गये कि 'सुसरी' जी सवेरे-सवेरे उठकर झाड़ू दे रही हैं। फिर तो झपकी आई, सो दिन चढ़े ही टूटी, तब—जबकि अपने पड़ोसी ने पुकारा—"उठो साहब! तुम्हारे घर में सेंध लग गई है...."

"सेंध है या किसी चूहे की बिल, जरा गौर से देख लो।"

"सेंध है जी, सेंध! कोई चोर घुस गया था रात में...."

"आँय!...." मैं घबड़ा कर उठा। देखा, सब कुछ नायब था। नाक पोंछने के लिए एक चिथड़ा भी नहीं बचा था।

देखा आपने ! आजकल के चोर भी कितने रसिया हो गये हैं। बीवी बनकर रात भर साथ रहते हैं और सबेरे चलते-चलते सब कुछ बाँध ले जाते हैं। वही मसल हुई कि 'रात भर रहियो सबेरे चले जइयो जी' और चले जइयो तो शौक से जइयो मगर सारा माल-असबाब भी लेते जइयो जी !

धरहरा !

माधोराव के धरहरे दो थे, आसमान-चुम्बी, जैसे काशी के बाबा विश्वनाथ अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर चाँद पकड़ रहे हों। आप काशी आये होंगे तो इन धरहरों को जरूर देखा होगा, इन पर चढ़े भी होंगे ? कैसा लगता था आपको ? डर गये थे नऽ। बाप रे बाप ! इतने ऊँचे कि जमीन की चीज अंगूर-सी दिखाई पड़े।

हाय रे धरहरा ! इसकी ऊँचाई देखकर अपनेराम को काशी के प्राचीन उन्नत मस्तक की याद हो आती थी। मगर धरहरे के नीचे मस्जिद में बैठे हुए खुदा ने पिछले दिनों एक धरहरा धराशायी कर दिया, जैसे बाबा विश्वनाथ का एक हाथ ही टूट गया हो।

काशी के अतीत गौरव की आधी निशानी अररर‌धड़ाम हो गई। अब केवल आधी निशानी ही बच रही है, सो भी डाँवाडोल स्थिति में। भगवान भला करे, काशी नगरी इन धरहरों के बिना राँड़ हो जायगी।

ओ० टी० आर० !

ट्रेनों में ट्रेन ओ० टी० आर०, नाज-नजाकत से भरपूर ! चलती तो ऐसे है, जैसे गज-गामिनी पाँवों में मेंहदी लगाकर। भीड़ इतनी कि मुसाफिर कुर्बान एक-दूसरे के ऊपर। टिकट चेकरान इतने सावधान कि हजारों यात्री बेटिकट बेड़ा पार कर जायँ। जनता के सच्चे सेवक हैं इनके अहलकारान। इनकी जेबें इतनी तिलस्मी

होती है कि घूस देते जाइए और फूस की तरह सब गायब होता जाय।

अपनेराम ने भी ओ० टी० रानी का मजा चखा। अपने भतीजे की शादी में एक 'फुल' डिब्बा रिजर्व कराया था ताकि बराती बगैर सींग-पूँछ हिलाये पहुँच जायँ जनवासे के नगर तक।

अरे साहब! रिजर्व डब्बा भी मिल गया, बराती भी चढ़ गये, मगर डब्बा चले तो कैसे चले, बिना घूस का फूल चढ़ाये। स्टेशन मास्टर ने फर्माया—"आपने डिब्बा रिजर्व कराया था, इंजन नहीं।" लीजिए साहब! ओ० टी० रानी के दरबार में इंजन भी रिजर्व हो गया। अपना अनाथ डिब्बा एक पैसेन्जर गाड़ी के पीछे लगाकर सनाथ कर दिया गया। डब्बा जोड़ने वाले खलासी महोदय ने इतना लम्बा मुँह फैलाया कि सौ रुपये की रेजगारी समा जाय। अपनेराम लोग भी अड़ गए कि सुराज के जमाने में घूस लेना और देना दोनों पाप है, सो यह पाप अब हमसे न होगा।

बड़े कहने-सुनने, नाक रगड़ने पर खलासी साहब का हृदय आधा पसीजा और उन्होंने डब्बा जोड़ दिया। चलते-चलते फरमाते गए—"हमें कुछ नहीं मिला, इसका नतीजा आगे चलकर मालूम होगा...."

खैर साहब! गाड़ी चली, हमारा डब्बा भी चला जोर से। नदी-नाले लाँघ चले हम लोग। एक बीहड़ स्थान में पहुँचे तो एका-एक डब्बे की रफ्तार कम होने लगी और दो ही मिनट बाद 'डेड स्टाप' हो गये हम लोग। अपनेराम सड़ाक् से नीचे उतरे तो देखते क्या हैं कि हमारा रिजर्व डब्बा फिर अनाथ हो गया है और पैसेंजर रानी नाथ-पगहा तुड़ाकर पता नहीं कहाँ लुप्तायमान हो गई हैं, हमें बियाबान-सुनसान स्थान में छोड़कर।

अब अपने लोगों को खलासी साहब का फरमान याद आया, मगर कर ही क्या सकते थे। साईत की घड़ी भी नजदीक थी और हमारा रिजर्व डब्बा एक ऐसी जगह पर रिजर्व हो गया था, जहाँ शादी का पैगाम भेजने के लिए आँखों की पहुँच में कोई

गांव ही नहीं।

अल्ला-अल्ला करते कई घण्टे गुजरे। पीछे से आकर एक मालगाड़ी महोदया ने हमारे रिजर्व डब्बे को धक्का देकर सजग किया तो डब्बा साहब चले। सब बराती चिल्ला उठे—"ओ० टी० रानी...." अपनेराम ने कहा—"जै!"

लतखोर !

अपने नाना बुजुर्ग बहुत पहलवान थे। वे अक्सर नानी जी से कहा करते थे कि अखाड़े के लतखोर भी कभी-कभी आला दर्जे के लड़ाकू यानी गामा बन जाते हैं, जैसे वे स्वयं।

उस समय अपनेराम सवा दो अंगुल के बच्चे थे और नाना बुजुर्ग की यह बहक सुनकर नानी जी के गोद में चुपचाप बैठे रहते थे। सोचते थे कि नाना बुजुर्ग पहलवान क्या हो गये, गप्पे हाँकने का एक नम्बरी सार्टिफिकेट भी हासिल कर बैठे। भला अखाड़े के लतखोर क्या खाकर गामा जी की दुम बनेंगे? मगर आज इस पचपन साला उम्र में अपने नाना बुजुर्ग की वह बहक मुझे याद आ रही है। यदि आज वे जिन्दा होते तो अपने राम उन्हें साष्टांग दण्ड-प्रणाम करके उनका चरणामृत सटाक से हलक के नीचे उतार लेते।

तो साहब, अखाड़े के लतखोर भी आला दरजे के पहलवान बनते हैं। यों कहिये कि अन्य पहलवान लात मार-मारकर अपनी कला उन्हें सिखा देते हैं। सत्याग्रह-अखाड़े के पहलवान कांग्रेसियों ने भी कितने ही लतखोरों को सत्याग्रह की कला सिखा दी और वे आज सचमुच के पहलवान बन बैठे हैं।

उस दिन अपनेराम आसमान से उड़ते-उड़ते 'अररधड़ाम' हो गये जब सुना कि हिन्दू धर्म का ध्वज धारण करने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लतखोर पहलवान जोर-शोर के साथ सत्य-आग्रह करने वाले हैं, सो भी क्यों?—अपने गुरु गोल-वल-कर जी को जेल से बाहर लाने और सुभी सरकार द्वारा 'संघियों' पर

लगायी गयी रोक हटाने के लिए। अपनेराम को इस 'झूठाग्रह' (सत्याग्रह नहीं) के समाचार से बड़ा सदमा पहुँचा....इस बात पर कि अपनी नई-नवेली सरकार ने सुहाग की रात में लात मार-मार कर जिसको पहलवानी का दर्जा दिया वे ही अब दिन होने पर ताल ठोंक कर उसी के सामने 'अकड़ायमान' हो रहे हैं। हमारी प्यारी सरकार इसे कैसे बरदाश्त कर सकती है। वह भी तो 'पहलवानिन' है। ऐसे-ऐसे लतखोरों को तो 'कालाजंग' मार-कर वह 'चित्त' कर देगी।

मगर सरकारी लात भूलकर हमारे 'संघियों' ने 'झूठाग्रह' छेड़ ही दिया। सरकार रात की खिसियानी बैठी ही हुई थी, संघियों पर छलाँग मारकर दौड़ी और 'यह ले-वह ले' लगी कालाजङ्ग मार मार कर उन्हें जेल के अन्दर ठुँसने। एक ही 'यह ले-वह ले' में सारी संघीय जमात 'बम' बोल गई और लगी जेल के अन्दर 'गुटरुँ गूँ' करने कबूतरीय भाखा में।

हमारे संघीय दोस्त हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिये यह कर रहे हैं। जरा ठण्डे दिमाग से गर्म-गर्म बातें सोचिये। आज के जमाने में दुलहिन सरकार का घूँघट सम्हालने वाले अधिकांश कर्णधार हिन्दू हैं, मगर शायद उन्हें हिन्दू संस्कृति का ध्यान नहीं है तभी तो इन पहलवानों को मैदानेजङ्ग में लँगोट दिखानी पड़ी।

भाई जान! सच तो यह है कि संघीय दोस्तों का आधार घृणा है। वे केवल हिन्दुओं का राज चाहते हैं, मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बियों को सीधे 'पश्चिम' भेजकर! यही है इनकी हिन्दू संस्कृति, जो कहीं वेद पुराणों में भी आपको खोजे नहीं मिलेगी। यद्यपि अपनेराम वेद-शास्त्रों के ज्ञाता—पाठक नहीं, फिर भी हमे विश्वास है कि किसी धर्म की कोई पोथी मानव को घृणा का आदेश नहीं देती। थोड़ी देर के लिए यदि मान लिया जाय कि हिन्दू-संस्कृति निहायत खतरे में है—तो यह कोई ताज्जुब की बात नहीं। आज इन्सान की जान भी तो खतरे के मुँह पर अँटकी है। रोटी-कपड़े तथा खाने-पहनने के सवाल से भी बढ़कर हिन्दू-संस्कृति की

रक्षा का सवाल है ?....नहीं ! हर्गिज नहीं ! कभी नहीं ! जब जान ही नहीं रहेगी, तो संस्कृति लेकर चाटेगा कौन ?

भाइयों, बहनों और बहनोइयों ! समझिये, गौर फरमाइये ! यह गद्दारी है, सरासर गद्दारी—राष्ट्र के साथ, जनता के साथ, तथा भाइयों-बहनों और बहनोइयों के साथ ! ऐसे अभाव के युग में भोली-भाली सरकार को गुस्सा दिलाना, उसका ध्यान रोटी-कपड़े की समस्या से दूर हटाना, राष्ट्र की जान लेना है। ऐसे जान लेऊ लोगों पर खुदा की मार।

हम जानते हैं, आप जानते हैं और राष्ट्र का पोता-पोता जानता है कि संघीय दोस्तों के कटु प्रचार के ही कारण पूज्य बापू खून से नहला कर दूसरी दुनियाँ को भेज दिये गये। हम आप जो एक दिन संघ से कुछ दिलचस्पी रखते थे, थू-थू-थूकते हैं।

आज कांग्रेस में खामी है, सरकार में भी त्रुटियाँ हैं और यदि संघीय दोस्त इन खामियों और त्रुटियों के विरुद्ध जेहाद करते तो शायद हम-आप भी उनका पचास परसेण्ट समर्थन तो गोलवलकर जी की रिहाई के लिए, जिसने राष्ट्र का, जनता का कोई उपकार नहीं किया, जिसे सिवाय संघीय दोस्तों के और कोई जानता भी नहीं, करते ही। ऐसे व्यक्ति चाहे जेल में रहें या कूड़ाखाने में पूछता ही कौन है, उनकी परवाह ही किसे है ?

सरकार इन लतखोर पहलवानों पर जी-जान से कूद पड़ी है। खूब दाँव-पेंच कर रही है। संघीय दोस्त धड़ाधड़ 'चित्त' हो रहे हैं ! कुछ लोग 'चित्त' होने के भय से भाग खड़े हुए हैं।

अपनेराम की राय है कि सरकार तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा इन पहलवानों की वास्तविक स्थिति साधारण जनता के सामने प्रकट कर दी जाय ताकि जनता सरकारी दमन को देखकर बिदके नहीं।

दीया तले अँधेरा !

आप के पास दीया तो होगा ही—तो उसके नीचे अँधेरा भी जरूर होगा, चाहे आपने गौर किया हो या न किया हो । दीया चाहे कड़ू तेल का हो या मिट्टी या रेड़ी के तेल का....उनके नीचे अँधेरा जरूर होगा । बिजली के दीये की बात छोड़ दीजिये, क्योंकि जिस समय हमारे बुजुर्गों ने इस कहावत की ईजाद की थी उस समय बिजली-बत्ती को देखने को कौन कहे, किसी ने सुना भी न था ।

इस कहावत को अपनेराम लड़कपन से ही सुनते आ रहे थे और सुनते-सुनते कान इतने पक गये थे कि 'दीया तले अँधेरा' की बात एकदम भूल बैठे थे, कि कम्बख्त दीये की तरफ कभी गौर से देखा ही नहीं कि मालूम हो, कहाँ उजाला है और कहाँ अँधेरा । अपनी चमगादड़िन जी की भी यही शिकायत रहती है कि मैं दीये की रोशनी में भी देख नहीं सकता और अक्सर आते-जाते उनसे 'कोलाइजन' यानी टक्कर ले लेता हूँ । खैर उनकी बात छोड़िये—उनसे टकराने पर तो चारों ओर घटाटोप अन्धकार दृष्टिगोचर होता है ।

एक दिन अपनेराम के एक शहरी दोस्त मेहमान बनकर आये । बेचारे शहर में बिजली के दीये के नीचे रहते थे । वे क्या जानते कि देहाती दीयों के नीचे अँधेरा होता है ।

शाम को श्रीमती जी ने शुद्ध कड़ू तेल का दीपक कमरे में रखा तो मित्र महोदय एकाएक चीख पड़े—"यार चमगादड़ !"

"क्या है ?...."अपनेराम उनके चौंकने पर उकड़ूँ आसन मार कर बैठ गये ।

"अँधेरा !...." वे बोले ।

"कैसे अँधेरा ?" अपनेराम भी ताज्जुब में आकर इधर-उधर देखने लगे और सोचने लगे कि दीया जलते रहने पर भी मित्रजी की आँखों में अँधेरा किधर से फट पड़ा ?

"अरे यार !" मित्र जी ने कान पकड़ कर मेरा सर दीये की ओर सुदर्शनचक्र की तरह घुमा दिया—"इधर देखो मालूम हुआ तुम्हारे दीये के नीचे एकदम अँधेरा है !"

अपनेराम भी 'दीया तले का अँधेरा' बड़ी देर तक देखते रहे। इसके पहले कभी इस पर हमने ध्यान भी नहीं दिया था। देखकर काफी ताज्जुब हुआ और हर्ष भी कि हमारे बुजुर्गान कितने पहुँचे हुए थे—ऐसी कहावत कह दी कि 'हाथ कंगन को आरसी क्या' की तरह स्पष्ट देख लीजिए।

मगर अपनेराम मित्रजी के सामने 'डाउन' कैसे हो सकते थे। तड़ाक से बोले—"अरे यार ! यह तो ब्रह्म वाक्य की तरह अटल है, दीया तले तो अँधेरा रहेगा ही, अपने नाना बुजुर्ग कहा करते थे...."

"छोड़ो भी नाना-नानी की बात" मित्रजी ने कहा—"हमारे शहर में यदि ऐसी विचित्र घटना हो जाय तो काँग्रेस अधिवेशन की तरह मेला लग जाय...."

"कैसी विचित्र घटना ?"

"यही दीया तले अँधेरा वाली ?....सच कहता हूँ शहर के दीये लाजवाब होते हैं। उनके नीचे जरा भी अँधेरा नहीं रहता...."

"उनके नीचे अँधेरा रहेगा कैसे ?" अपने राम बोले-"चमगादड़ की तरह कमबख्त छत से उलटे लटके रहते हैं जो...."

तो समझ गये न साहब ! दीया तले अँधेरा रहता ही है, चमगादड़ीय मार्का शहरी दीयों को छोड़कर।

आज हमारी सरकार भी दीये की तरह जलती रहती है, परन्तु उसके नीचे काफी अँधेरा है। इस अँधेरे के कारण जनता में काफी असन्तोष है। रोटी-पानी की दिक्कत, कपड़े-लत्ते का अभाव, घूसखोरी का बोल-बाला, सब इसी अँधेरे के लक्षण हैं।

मगर हमारी सरकार कड़ूए तेल के दीये की तरह ऊपर मुँह करके भकाभक जल रही है—अपने नीचे का अँधेरा वह देखे तो कैसे ? यदि वह भी चमगादड़ीय मार्का शहरी दीये का रूप धारण

कर ले तो नीचे का अँधेरा भी मिट जाय और जनता भी खुश व खुर्रम हो जाय।

काफी दिनों से हमारे दोस्त चिल्ला रहे हैं कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाया जाय, मगर सरकार चुप है, बराबर ऊपर मुँह किये जल रही है। कुछ खोदने वाले खोदते हैं कि हिन्दी में बड़े 'बम्बास्टिक' शब्द हैं, जो आम जनता की समझ मे नहीं आ सकते।

अपनेराम के विचार से साहित्य की भाषा एवं बोलचाल की भाषा में कुछ न कुछ पार्थक्य तो रहता ही है। साहित्यिक भाषा सभी 'ऐरे-गैरे' नहीं समझ सकते। मगर इससे हिन्दी का महत्व कम नहीं हो जाता। सारे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के कुछ भागों में भी हिन्दी समझी-बोली जाती है, भले ही इसे दूसरा रूप माना गया हो। सरकार को चाहिये कि तड़ से हिन्दी को राज भाषा मान ले और सड़ से लोग-बाँग 'हिन्दी बोलो जी, लिखो, जी' शुरू कर दें। मगर सरकार अभी ऐसा नहीं करेगी, नहीं तो दीया तले अँधेरा कैसे रहेगा? भले ही काबुल के बुलबुल चहक रहे हों, मगर सरकार तो शुद्ध कड़ू के तेल का ही दीपक है नऽ। जलो-जलो, ठीक आसमान की तरफ ताकती हुई जलो 'माई डीयर' सरकार!

काबुल की बात उठी तो सुन लीजिए। काबुल की युनिवर्सिटी ने अपने यहाँ संस्कृत की पढ़ाई अनिवार्य कर दी है, क्योंकि संस्कृत के ज्ञान से पश्तो भाषा की उन्नति होगी।

सुना साहब आपने? हम समझते थे कि काबुल के गदहे सिर्फ अंगूर ही खाना जानते हैं, मगर अब मालूम हुआ कि वे संस्कृत भी पढ़ सकते हैं ताकि उनके 'ची-पों-ची-पों' में प्रगति आ सके।

मगर इन हिन्दुस्तानी गदहों को क्या कहें, जो संस्कृत की कौन कहे हिन्दी के नाम पर 'रेंकायमान' हो उठते हैं। इनको ठीक करने के लिए तो धोबी का 'डेढ़हत्था' चाहिए।

हाँ! अपनेराम अभी से कहे देते है कि बगैर लगड़ा कदम उठाये यह दीया तले का अँधेरा कभी दूर नहीं होगा।

स्वराज्य हुआ तो कुछ दिनों तक आशा बँधी रही कि हालत सुधरेगी। मगर ज्यों-ज्यों दिन गतिमान होते गये, त्यों-त्यों जनता निराश होने लगी। आज तो चारो ओर यही शोर है 'कांग्रेस में भ्रष्टाचार है—कांग्रेसी घूस खा रहे हैं।'

अपनेराम काफी समय तक इन कांग्रेसियों पर तथा परिस्थितियों पर गौर फरमा चुके हैं। यह दुरुस्त है कि आज का कांग्रेसी पहले का त्यागी नहीं रह गया है। फिर भी वर्तमान छीछालेदर का सारा दोष हम किसी एक जमात के सर पर नहीं लाद सकते। हम यह भूल जाते हैं कि साधारण सरकारी पदों पर अब भी वही कर्मचारी विद्यमान हैं जो गोरों के राज्य में अपनी शैतानी के लिये प्रसिद्ध थे। अब सुराज पाकर ये कर्मचारी और भी खुलकर खेल रहे हैं। सैयाँ भये कोतवाल, तो सिपाही किससे डरें और क्यों डरें? साधारण जनता इन्हीं से पीड़ित है और चूँकि कांग्रेस का सरकारी दीया ऊपर मुँह किये हुए जल रहा है, अतः दोष उसी को लोग देते हैं कि अपने तले अँधेरा क्यों कर रखा है?

भाई! यह सब अँधेरे की बातें हैं और अपने नाना बुजुर्ग जो कहा करते थे कि दीया तले अँधेरा रहता है, वह सवा सोलह आना सही है।

भैया जवाहर!

जवाहर दो!

एक रत्न, दूसरा नेहरू!

एक पत्थर, दूसरा पानी!

एक धन की गरिमा, तो दूसरा धन त्यागी!

अपने नाना बुजुर्ग कहा करते थे कि 'झगड़े की खान जवाहर' और अपनेराम आज फर्मा रहे हैं कि 'जवाहर झगड़ों का उन्मूलन कराने वाला' है!

यहाँ अपनेराम अपने नाना बुजुर्ग के जवाहर की बात छोड़कर

अपने जवाहर यानी लाल की बातें करेंगे। अपने जवाहर साहब लाल भी हैं और नेहरू भी और सरकारे हिन्द के वजीरेआजम भी। क्या शान है, क्या अदा है कि लन्दन भी कुर्बान इन्साने हिन्द पर।

हाल में लन्दन नगरी में प्रधान मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ। अपने जवाहर भी उड़ते-उड़ते सभा में प्रश्नोत्तर देने जा पहुँचे। लोग दंग रह गये भारत के जवाहर को देखकर। कुछ लोग भड़के भी, शेर को कोट पतलून में आच्छादित पाकर।

लेकिन साहब, अपना यह शेर दहाडते-दहाडते एकदम भीगी बिल्ली बन गया और अन्त में ब्रिटिश कामन-वेल्थ के आगे झट से दण्डवत कर बैठा। लोगों को आश्चर्य हुआ—भारत के लोग भी तनतनाये-तमतमाये, मगर फिर दुम टाँगों के नीचे दबाकर चुप हो गये। क्या करते, अपने जवाहर साहब देश की नाक, दाहिने हाथ जो ठहरे।

लन्दन से लौटने पर अपने जवाहर जी ने एक भड़कदार हवाई भाषण दिया रात के पौने आठ बजे, जिसे अपनेराम ने अपने रेडियो पर बड़े ठाट से सुना। भाषण क्या था, एकदम हिन्दी-उर्दू स्तानी का 'मिक्चर' कि गले के नीचे उतरे ही नहीं। जब गले के नीचे नहीं उतरा तो अपनेराम ने कान के नीचे ही उतार दिया।

अपने जवाहर जी ने जोरदार हिन्दी-उर्दु स्तानी शब्दों में लन्दन में किये गये बिलैया दण्डवत का बखान किया और कहा कि पिछले २० साल की सेवाओं के बल पर मैं यह कह सकता हूँ कि भारत का कोई भी अहित मेरे हाथों नहीं हो सकता, उसकी शान में मेरे किसी कार्य से बट्टा नहीं लग सकता।

सो भैया अपने जवाहर पर जो शंका करे सो गदहा, बिना सींग-पूँछ का खर! अपने जवाहर ने जो दण्डवत किया सो अच्छा हो किया। सारा संसार इस समय असार झगड़ों में पिला पड़ा है। अपने देश के लिए यह परम जरूरी है कि अपना 'कनेक्शन' दूसरे देशों के साथ लगा रहे। सबसे प्रेम रहे। बैर काहे हो?

अपनेराम जी की पूरी सहानुभूति अपने जवाहर जी के साथ है।

राज का काज चलाना हलवा का कौर थोड़े ही है। लोहे का चना है जनाब कि चबाते जाइये मगर एक चप्पड़ भी न उखड़े। घर के अन्दर काली बीवियों के सामने हम-आप सभी चालीसमार खाँ बन सकते हैं, मगर गोरी बीवी का जो अन्चल सम्हाले सो पट्ठा।

भैया जवाहर और भौजी सरकार दोनों अपनेराम के पूज्य-पाद हैं, परन्तु अपनेराम आँख मूँदकर और हाथ से टटोलकर पूजा करने के आदी नहीं। हमें तो देवी-देवताओं को भी खरी-खोटी सुनाने का गवर्नमेण्ट लाइसेन्स हासिल है।

भैया जवाहर और भौजी सरकार तथा अन्य कितने ही देवर मिनिस्टरों ने आज तक जो कुछ किया है, वह कत्तई काफी नहीं है। देश में करोड़ों भूखे नंगे-भिखमंगे आज त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। कम साधन तथा कम-बेश समय में सरकार ने जो कुछ किया है, उससे भैया और देवरों को सन्तोष भले ही हो परन्तु कम अक्ल सन्तान जनता को धैर्य नहीं। वह तो सुराज के जमाने में सोने का भोजन और दूध के कुल्ले करना चाहती है।

भैया-भौजी-देवरों ने प्रवासी भारतीयों के लिए बहुत कसरत किया, परन्तु गोरे निशाचरों को वे पछाड़ न सके। आज अफ्रीका, फिजी, मलाया आदि स्थानों में हमारे भाई गोरे हाथों की काली चाबुक खाकर तड़प रहे हैं। हिन्दुस्तानी अफसरान को खस की टट्टी नसीब है तो समुद्र पार के बिरादरान अंग्रेजों के 'टट्टी की ओट शिकार' शिकार हो रहे हैं। यह शर्म की बात है... भैया-जवाहर के लिए, भौजी सरकार के लिए, माई डियर देवरान मिनिस्टरान के लिए। कभी-कभी यह सब सोचते-सोचते अपनेरामजी को 'वीपिंग' यानी रुदन का शौक हो आता है और ससम 'वायस' में यह गाना गुनगुनाने लगते हैं—

"भइया जवाहिर हो, कवने सइतिया लेहला शासन-भार ?"

काली का कोप !

अपनेराम को तो बात-बात में अपने नाना बुजुर्ग की याद आ जाती है। पहले पहल जब वे रेलगाड़ी पर चढ़कर सकुशल घर वापस आये थे, तो बड़ी शान से फर्माया था –"रेलगाडी में काली मैया का निवास होता है। वही उसे चलाती हैं।"

और जब बहुत साल पहले बिहटा रेल दुर्घटना हुई थी तो नाना बुजुर्ग ने रोते हुये वक्तव्य दिया था—"यह काली मैया का कोप है !"

उस दिन अपनेराम के कानों ने जब रेडियो-फोन पर यह सुना कि काशी में रेलगाडी उलट गई तो आँख मूँद कर 'या काली महा काली भद्रकाली नमोस्तुते' का एक हजार पाठ करने लगे। काशी कोई दूर तो है नहीं, सो ऐसा लगा जैसे रेलगाडी एकदम अपने कानों के पास उलटी हो और करुण चीखों से कलेजा दहलने लगा।

पहले जब रेलगाडियाँ लड़ती थीं तो एक-दूसरे से लोग कहते थे कि पैटमैन या स्टेशनमास्टर का दोष है। अब जो पटरियाँ उखाड़ कर रेलगाडियाँ गिराई जाने लगी हैं, तो अपनेराम कहते हैं कि इसमें लोगों का दोष है।

सोचकर कितनी ग्लानि होती है। इन्सान की खूनी प्यास शायद अभी तक बुझी नहीं। जिन लोगों का यह कार्य है वे रावण के वंशधर, कंस के नाती, शुम्भ-निशुम्भ के अवतार हैं। वे देश के शत्रु, जनता के दुश्मन, पब्लिक के 'एनिमी' हैं। अगर इन शैतानों का पता लग जाय तो इन्हें ऐसी फाँसी दी जाय कि साढ़े सात दिन तक इनकी जान न निकले। जान निकलने के बाद इनका शव रिक्शे के पीछे बाँधकर पूरे शहर में घसीटा जाय। ये कमबख्त सन् १९४२ के विप्लव की प्रैक्टिस आजकल भी कर रहे हैं। कितनी घृणित बात है ? शर्म करो कुत्तो ! भौंकना हो तो आगे आकर भौंको, कुत्तेदानी के अन्दर से भों-भों करना ठीक नहीं।

बेचारी सरकार को क्यों दोष दूँ। उसे तो गर्मी में गर्मी से

फुर्सत नहीं। भयङ्कर घटनाएँ घटती हैं, तो जनता सुनती है— 'इतने मरे, इतने घायल हुए' परन्तु इसके बाद यह पता ही नहीं चलता कि इस घटना के लिए किसको पकड़ा गया, किसको फाँसी दी गई, किसका सजा मिली।

सच तो यह है कि ऐसे लोग पकड़े ही नहीं जाते। सरकार का सी० आई० डी० विभाग खा-पीकर मस्त बना सोता रहता है। अपने नाना बुजुर्ग कहा करते थे कि कुत्तों को भर पेट खाना कभी मत दो, नहीं तो ये आलसी बनकर भौंकना छोड़ देंगे। सरकार को चाहिये कि वह इस कथन को सरासर नोट कर ले।

सरकार तुम्हारी आँखों में!

अपने नाना बुजुर्ग आला दर्जे के आशिक-मिजाज थे। जब अपनेराम छटाँक भर के बच्चे थे और ननिहाल की गलियों में परम पूज्य नाना बुजुर्ग की भिण्डीनुमा ऊँगली पकड़े हुए घूमते थे तो नाना की आशिक-मिजाजी कभी-कभी देखने को मिल जाती थी।

नाना बुजुर्ग किसी हसीना को देखकर दाईं आँख इस तरह दबा कर कटाक्ष करते थे कि काना भी मात, और छाती पर हाथ रखकर इस तरह से आह भरते थे कि चाय की केतली भी क्या भाप फेंकेगी उस अदा से और जब उनकी जबान 'न जाने क्या-क्या भरा हुआ सरकार तुम्हारी आँखों में। दीनों दुनिया दोनों का दीदार तुम्हारी आँखों में' का रट लगाती थी तो नाना कसम अपने राम अपनी आँखें टटोलने लगते थे कि देखें अपनी आँखों में कुछ भरा है या नहीं।

तो साहब! नाना बुजुर्ग आशिक-मिजाज थे। उनकी गोद में बचपन गुजारने वाले अपनेराम भी कम आशिक-मिजाज नहीं, फर्क सिर्फ यह है कि नाना बुजुर्ग हर किसी को 'सरकार' की पदवी बख्श देते थे, और अपनेराम तो केवल एक 'सरकार' पर फिदा हैं, सिर्फ अपनी सरकार पर। अपनी सरकार समझे न आप, जिसका

दामन नेहरू पटेल, आजाद वगैरह भारत के त्यागी नेता चूमते हैं।

अपनी सरकार की अदाएँ न्यारी हैं। इतनी दिल-फरेब कि अपनेराम कभी-कभी हसरत भरी आवाज में गाने को मजबूर हो जाते हैं—"हाय, किस बेवफा से आँख लड़ी। न लगी आँख जब से आँख लड़ी!"

सचमुच जब से अपनी सरकार का साया हुआ, तब से आँखें नहीं लगीं। जनता सुख की नींद सो नहीं सकी। रामराज्य का स्वप्न आँख खोलते ही गायब! सुख-शान्ति से जीवन बिताने की आशा, हाथ पर रखे हुए फिसलनकारी पारे की तरह ढलकर धूल-धूसरित हो गई।

भारत की करोड़ों ग्रामीण जनता भूख से तड़प रही है, वस्त्र के बिना नंगा नाच कर रही है परन्तु अपनी सरकार शहरों में कंट्रोलीकरण करके शहरियों को अन्न-वस्त्र भेंट कर रही है, जहाँ बड़े-बड़े साहूकार मदिरा में डूबकर वेश्याओं के कोठे पर उतराते हैं, जहाँ सिनेमाघर होते हैं, जहाँ पार्क होते हैं, जहाँ होटल होते हैं। जिनके पास धन होता है, उन्हें अपनी सरकार भी सुविधा दे रही है। जो गरीब हैं वे आज भी पिस रहे हैं, चीख रहे हैं?

सच मानिए, अपनी सरकार धनियों के हाथ की कठपुतली बनती जा रही है। पूँजी-पतियों के करों में भारी कमी इसलिए कि वे अपने धन का सदुपयोग करके राष्ट्र के व्यापार एवं उत्पादन में वृद्धि करें और गरीब जनता पर अनावश्यक करों की भरमार कर दी गई है। कार्ड और लिफाफा का दाम बढ़ा दिया गया है। कपड़े, चीनी आदि पर अतिरिक्त कर लगा दिए गए हैं।

जनता चिल्लाये नहीं तो क्या करे? जनता का विश्वास अपनी सरकार पर से जाता रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

सुनने में तो बड़ा मीठा लगता है कि सरकार जनता के लाभार्थ हजारों बन्दिशें बाँध रही है। कोई दस-साला स्कीम है तो कोई बीस-साला। मगर हम तो वर्तमान को उज्ज्वल देखने के

इच्छुक हैं। हम तड़प-तड़प कर मरें और हमारी औलाद ने घी के दीये ही जलाये तो कम्बख्त अपने को क्या लज्जत मिली ?

रेल का किराया बढ़ाया गया मगर पुरानी दिक्कत ज्यों की त्यों, वरन् उससे भी अधिक ! क्या कहें अपनी सरकार को ! खैरियत है कि अपनेराम उस पर फ़िदा हैं नहीं तो दिखा देते कि चींटी के भी जब पर निकलते हैं तो वह कुछ कर ही गुजरती है....और नहीं तो कम्युनिस्ट बनकर दस-पाँच साल की हवा हम भी खा लेते जेल की।

यारों ! कम्युनिज्म का भूत आजकल अपनी सरकार को बेहद परेशान कर रहा है। बेचारी प्यारी सरकार घबड़ा गई है और धड़ाधड़ लोगों को जेलों में मेहमानदारी बख्श रही है।

अभी पिछले हफ्ते काशी के दो युवक सरकार का पानी भरने के लिए पकड़ लिए गये। खुफियों ने बेचारों की बेइज्जती तो कर ही दी, उनकी पत्नियों के साथ भी दुर्व्यवहार हुआ। एक खुफिए ने तो अपनी धोती खोलने तक की बात कह डाली।

देखा आपने ! यह है अपनी सरकार और ये हैं सरकार के कर्मचारी, जिनकी पूजा अगर लात-बात से की जाय तो भी कम।

जाने दीजिए साहब ! सरकार की आँखों में जो जँचे, वही ठीक। हम-आप चिल्लाते ही रहेंगे कि सरकार में भ्रष्टाचार है, मगर कोई सुनेगा नहीं।

भ्रष्टाचार के एक सौ मामले पकड़े गये जिनका सम्बन्ध सरकार के उच्च पदाधिकारियों एवं कांग्रेस के गणमान्य नेताओं तक से है। हाल ही में समाचार पत्र महोदय ने खबर दी है 'सुलतानपुर में शराब बन्दी लागू है।' फिर भी एक एम० एल० ए० साहब वेश्या के कोठे पर शराब पीते हुए पकड़े गए। समाचार-पत्रों पर बेहद गुस्सा आता है, जो ऐसे कमीनों का नाम नहीं प्रकाशित करते। हम भी तो सुन लेते जरा अपने शराबी दोस्त का नाम।

अपने राम को भय लग रहा है कि कहीं अपनी सरकार से अपना जी खट्टा न हो जाय कि अपने को मंजिले इश्क की राह

छोड़ कर अन्यत्र भटकना पड़े। सो यह दास्ताँ हम यहीं 'स्टाप' करते हैं।

जनसेविक पुलिस !

साहबों ! अगर अपनेराम सच न बोलें, तो पुलिस के समान जनसेविक कर्मचारी भूत-भविष्य-वर्तमान कभी भी नहीं मिलेंगे। हमारे प्रान्त की पुलिस तो सेवा-भाव में सबसे 'फ्रन्ट' पर है। ट्रेनिंग पीरियड में इन्हें जबानी-अभ्यास भी कराया जाता है शायद, ताकि आगे चलकर ये सेवक जनता की माँ-बहनों को धड़ाके के साथ याद कर सकें। भारत में सुराज होने पर इन जनसेविकों का रोजगार कुछ ठ-ठ-ठप्प पड़ गया है, वर्ना अंग्रेजो पीरियड में आँखों के एक ही इशारे पर इनकी जेबें भर जाती थीं। आजकल तो इन बेचारों को कोई ठोस कार्य ही नहीं रह गया है, अतः हम जनता का कर्त्तव्य है कि इन्हें कोई नवीन कार्य सौंपें।

एक दिन की बात सुना दूँ। बीच बाजार में अपने एक मित्रजो मिल गये गोद में चारसालीय 'प्रोडक्शन' लादे ! बच्चा बड़ा प्यारा लग रहा था, सो अपनेराम ने बड़े लाड़-प्यार-दुलार से उसे चूमा-चाटा, फिर बात-चीत का सिलसिला जो चला तो अन्त में सिनेमा देखने के निश्चय पर आकर रुका। अब मित्रजी बड़े फेर में पड़े। सिनेमा देखने का निश्चय हो चुका, समय भी दस-बारह मिनट ही रह गये, सामने सिनेमा भवन का लाउडस्पीकर रेंक रहा था मगर गोद का बच्चा वे किसे दें ? घर दूर था, पहुँचकर लौटने में काफी देर हो जाती।

"रहने दो कल देख लेंगे...." अपनेराम ने तसल्ली दी।

वे बोले—"नहीं यार ! आज ही देखेंगे। इतने दिन के बाद तो घोंसले से निकले हो....इस बच्चे को मैं लाया ही क्यों ? इसे लेकर सिनेमा में बैठ भी नहीं सकता। शैतान रो-रोकर दूसरों से गाली सुनवायेगा। इसे खड़े-खड़े लिये रहो तो चुप, जरा भी बैठे कि रोनाध्याय प्रारम्भ...."

तभी अपनेराम की नजर सामने जा पड़ी—थाना !....बस उपाय दिमाग में आ गया। चट बोला—"मित्र ! बच्चा मुझे दो...."

"क्या करोगे ?" कहते हुये मित्र जी ने बच्चे को दे दिया। मैं तूफान मेलीय रफ्तार से बच्चे को लेकर थाने की ओर भागा। अगर वे मेरे अन्तरङ्ग मित्र न होते तो 'उचक्का मेरा बच्चा ले भागा' का शोर जरूर मचा देते। मगर अपनेराम पर उनको विश्वास था, अतः चुपचाप वहीं मूर्ति बनकर खड़े रहे।

थाने में आया। थानेदार साहब कुर्सी पर बैठे हुए मेज पर टाँग पसार रहे थे।

"क्या है ?...."

"सा-साहब ! यह ब-ब-बच्चा खो गया है।" अपनेराम ने कहा।

"खो गया है ?....कैसे ?...."

"ऐसे ही....हमें उस मोड़ पर रोता हुआ मिला...."

"आपको मिला ?...."

"जी हाँ....यों समझ लीजिये, हमने, इसे प-प-पाया....आप इसे सँभालिये....मैं चला...."

"सुनिये....अपना नाम-पता तो बता दीजिये...."

"जरूर-जरूर ! लीजिये श्री-श्री....जरा जल्दी कीजिये, मुझे सिनेमा जाना है...."

थानेदार ने मेरी हुलिया लिख ली।

अपनेराम की सूझ पर मित्रजी दङ्ग रह गये। ठाट से हम लोगों ने साथ-साथ सिनेमा देखा। फिर लौटकर दोनों आदमी थाने गये तो देखा मित्रजी का बच्चा ठाट से जलेबी तोड़ रहा था।

थानेदार साहब बोले—"यह बच्चा तो साहब बड़ा रोता है.... पुलिस दौड़ रही है, मगर इसके बाप का पता नहीं।"

"मैं खोज लाया साहब !....ये हैं !...." अपनेराम ने कहा।

"आप इसके बाप हैं ?"

"जी हाँ...." मित्रजी ने कहा।

"जी हाँ—सेंट-पर सेंट असली बाप साहब ! बड़ी मुश्किल से इनका पता लगा सि-सि-सिनेमा के अन्दर...." मैं बोला।

"सिनेमा के अन्दर ?"

"जी-जी नहीं, सिनेमा के बा-बाहर....ये बिचारे रोते हुए इसे खोज रहे थे...."

"लीजिये साहब ! आप अपना लड़का सम्हालिये.. बड़े लापरवाह हैं आप लोग....इन्होंने आपके बच्चे को यहाँ पहुँचाया है और आपको यहाँ तक लाये भी हैं, इसलिए इन्हें कुछ ईनाम...."

"अवश्य...." मिश्रजी ने पाँच का नोट मेरी ओर बढ़ाया।

हम लोग हँसते हुए वापस हुए। पुलिस के लिए यह नया काम कैसा रहा साहब ? इति श्री ईलस्ट्रेटेड-वीकलीयो नमः।

हाय होली !

जनाबों, इन साल की होली कैसी गुजरी, कीचड़ से लथपथ या रङ्ग से लबरेज या अबीर- गुलाब से सराबोर ! अपनेराम की तो मत पूछिये, होली आई और बन्दूक की गोली की तरह दन्न से आँखों के सामने से गुजर गई। अपनेराम पकड़ भी न सके उसे, कलेजे से लगा-सटा भी न सके। हाय मेरी होली ! तुझमें इतनी तेजी इतनी तूफानियत।

भई, होली का पर्व अर्ब-खर्ब वर्ष से चला आ रहा है। लोग पागल हो जाते हैं खुशी से, लुगाइयाँ बदहवास हो जाती हैं मदहोशी से, फिर तो 'ले पिचकारी-ले गुलाल' और सब लाल ही लाल, देखिये उधर कमाल, हाल बेहाल ! क्या कहें, हाय होली !

ऐसे पुनीत अवसर पर अपनेराम क्या दें आपको ? गरीब आदमी को हँस-बोल कर ही दिल को तसल्ली देनी पड़ती है। हाँ तो लीजिये 'लपक के'—एक मुट्ठी कीचड़ अपने गुण-ग्राही ग्राहकों की नाक में सड़ाक से ! छींक तो नहीं आई भाईजान ? हाँ, इसी

तरह निगल जाइये नाक के रास्ते से....अबीर की एक शलाका अपने लहरी लेखकों की आँखों में। अरे साहब, आँखें न मीजिये, याद रखिये 'तनक कंकरी के परे नैन होत बेचैन' सो ये नैन तो बेचैन होते ही रहते हैं। आप जरा धैर्य से हमारी यह शलाका ग्रहण कीजिये। एक-एक लोटा नाली का पानी अपने 'एजेण्टों' और विज्ञापन-दाताओं के पैजामों के भीतर। हें-हें रुकिये साहब, आज भाग नहीं सकेंगे....

कसम खुदा की, अपने इन शुभेच्छुओं ने चिनगारी के लिए जो-जो कलाबाजियाँ खाई हैं, उनके लिए अपनेराम का एक-एक रोआँ कृतज्ञता से खड़ा हो गया है, जिसका जी चाहे आकर साक्षात देख ले। होली के दिन, आप से क्या छिपाऊँ, यार लोगों ने इतनी पिला दी कि हाथ को हाथ तो सूझता ही नहीं था, नाक में आती-जाती हुई हवा की सरसराहट भी कम थी। कमबख्त भंग क्या थी क्लोरोफार्म थी कि बेतहाशा बेहोश किये देती थी। होश गुम, हवास गुम, दुम का कहीं पता ही नहीं। लड़खड़ाते-बलखाते घोंसले पर आया और 'सुसरी' जी की नजर बचाकर अपने 'स्लीपासन' पर जा पड़ा। डर था कि श्रीमती जी इस अनहोनी अवस्था में यदि देख लेंगी तो इस त्यौहार के दिन खामखाह अपनेराम के दो-चार पुश्तों को कोसने लगेंगी। मगर साहब, उनकी नाक तो चींटी की नाक को भी मात दे जाती हैं। सूँ ही लिया मुझे और आ धमकीं। बोली—"अच्छे तो हो ?"

"बिल्कुल....कहो तो उठकर बैठ जाऊँ।"

"पड़े, रहो....बहुत पी गये हो नऽ ?"

"न....नहीं तो, कौन कहता है ?....बात यह है भाभी जी ने थोड़ी-सी भंग पिला दी थी...."

"झूठ बोलते हो...." श्रीमती जी भी बिगड़ी—"जीजी तो दोपहर से ही यहीं है..."

लीजिये महोदय ! झूठ भी बोलने का साहस किया तो फेल कर गया। बोला—"हें हें, गलती हो गई...."

"हें हें—रहने दो, कोई बात नहीं...." उन्होंने हास्यात्मक मूड में कहा—"देखो, उस गिलास में दूध रखा है। बिटिया अभी आती होगी, पिला देना..."

बिटिया से उनका मतलब इन भाभी जी की छोटी-सी मुन्नी से था। कहकर वे चली गईं। अपनेराम आँखें मूँदे लेटे रहे। दिमाग उड़ा जा रहा था। ऐसा मालूम होता था कि या तो अपनेराम के पैरों के नीचे की जमीन ही गायब हो गई है या आसमान के चुम्बक ने ऊपर खींचकर त्रिशंकु बना दिया है।

खैर साहब! बिटिया रानी आईं, धीरे-धीरे। मगर अपनेराम आहट पा ही गये। चट्ट से उसे गोद में उठा लिया। बिटिया छटपटाने लगी छूटने के लिए तो हमने उसे गोद में थाम लिया, चूमा-चटकारा....अहाहा! बिटिया का बदन क्या है, रूई का गोला.... अरे यह क्या है?....तेरा हाथ है, कसम खुदा की, बड़ा पतला हाथ है बिटिया तुम्हारा...ऐसी ही एक बिटिया हमें भी हो जाय तो क्या बात....अच्छा ले दूध पीले...पीले बिटिया....दूध है, दूध!.... हाँ पीती चल....अरे, जीभ इतनी क्यों चपचपा रही है....धीरे-धीरे पी...."

बिटिया दूध पीती रही, अपनेराम आँखें मूँदे उसे गोद में लिए बैठे रहे। तभी ससुरी बिल्ली बोली—'म्याऊ'। यह बिल्ली पड़ोसी साहब की पालक है। कभी इधर तशरीफ लाती है तो चूहों को मौज मारने के लिए छोड़कर खुद इधर-उधर की चीजें खा डालती है। शैतान है एक नम्बर की। आज भी आ ही पहुँची बेईमान!

"म्याऊँ!"

अब अपनेराम क्या करें! नशे में सूरदास बने हुए गोद में बिटिया, हाथ में गिलास—अजीब आफत है।

"बाप रे बाप! बिल्ली क्या है कि एकदम कान पर चढ़कर बोलती है....अरे सुनती हो...."

"क्या है?...." वे वहीं से बोलीं।

"अरे जरा जल्दी दौड़कर पधारो....बिल्ली रानी आ गई है....'

श्रीमती जी दौड़ती आईं। क्यों न आतीं, बिल्ली रानी से वे कम परेशान नहीं थीं।

"म्याऊँ!"

"आ गई हो?—देखो तो, कहाँ बोल रही है कमबख्त? नाक में दम घुसेड़ दिया है इसने—राम राम! ऐसी बिल्ली कि घर में 'बिदाउट परमिशन' घुस आती है और बोलती तो ऐसी है सूअर की बच्ची, जैसे कान में ही बैठी हो....दिखाई पड़ी कि नहीं?"

"पड़ गई...."

"कहाँ है? मारो एक झाड़ू...."

"भँगेड़ी साहब! बिल्लीरानी आपकी गोद में आराम फरमा रही हैं और आप उन्हें दूध पिला रहे हैं...." वे बोलीं।

"गोद में दूध?....यह तो बिटिया है...." तभी अपनेराम का हाथ बिटिया की पूँछ पर जा पड़ा। बस साहब! हमने बिल्ली बिटिया को इतने जोर से श्रीमती जी के ऊपर फेंका कि वे भी हायराम कहकर दूर भागीं। देखा जनाब! यह नशा कितना अच्छा है कि बिल्ली को भी बच्ची बना देता है।

उसी रात और एक घटना घटित हुई। एकाएक जोर के धड़ाके की आवाज सुनकर अपनेराम की निंदिया रानी उचट गईं। नशा तो अब भी काफी तेज था, फिर भी आँखें खुल गईं। पड़े-पड़े ही पुकारा—"अजी उठो! ऐसी नींद सोती हो कि मौत भी मात!...."

"क्या है...." श्रीमती जी उठीं और अन्धकार में ही मेरी ओर बढ़ीं।

"देखो जी, अभी बड़ी जोर का धड़ाका हुआ था....या तो कोई चोर साहब तशरीफ लाये हैं या कोई गिरा है...."

भाईजान! अपनेराम तो अन्धकार में देख भी लेते हैं परन्तु श्रीमती जी की आँखें इतनी तेज नहीं, तभी तो ठोकर खाकर मेरे ऊपर अररर-धड़ाम् कर गईं।

"अरे, यहाँ क्या कर रह रहे हो ?...." वे बोलीं।

"कहाँ ?"

"जमीन पर !'

"वाह ! मैं तो अपने बिस्तरे पर हूँ ?"

"देखो जी, अब अगर भङ्ग पीयोगे तो ठीक नहीं होगा....गिर पड़े हो खुद और मुझे पुकार कर कहते हो कौन गिरा...."

"मैंने तो भङ्ग पी ली थी, मगर तुमने क्या पी ली थी जो गिरे के ऊपर गिर पड़ी....बाप रे बाप ! अब खड़ी क्या हो, उठाकर चारपाई पर सुला दो न जरा...."

लड़ गई !

अपने नाना बुजुर्ग कहा करते थे कि दुनिया के परदे पर केवल दो चीजें ज्यादा लड़ती हैं—नम्बर एक 'आँखें' नम्बर दो 'औरतें।' अपने नाना साहब अपनी जवानी में एक ही आँखबाज थे। जिधर नजरे इनायत फिरी कि दिल की एक-एक धड़कन इंजन के पिस्टन की तरह धड़ाधड़ चलने लगी। बुढ़ाई में अपनी जवानी की नादानी नाना साहब बड़े तपाक से फर्माते थे। आँखें लड़ाने का एक-एक किस्सा एक-दो छटाँक नमक और तोले भर मिर्च में डूबा रहता था। सो साहब, अपने नाना बुजुर्ग को आँखों के लड़ने-लड़ाने का तजुर्बा था।

और औरतों के लड़ने का भी उन्हें कम अनुभव नहीं था। अपनी नानीजान ऐसी मर्दानी औरत थीं कि नाना साहब की नाक के एक-एक बाल में दम हो जाता था। कभी दोनों नर-नारी जूझे यानी मैदानेजंग में उतरे तो नाना साहब की हार निश्चित रहती थी। पर नाना साहब, दाढ़ी और मूछों के बाल हमेशा साफ कराये रहते थे। कहते थे—'भई ये औरतें उखाड़ने में भी अव्वल होती हैं।'

यह तो हुई नाना बुजुर्ग के जमाने की बात, जबकि केवल आँखें और औरतें ही लड़ा करती थीं। अब तो हम जैसे नाती-पोतों

का जमाना है। दुनिया एडवांस हो चुकी है, सो इन्सान तो इन्सान, इन्सान की बनाई बेजान मशीनें भी लड़ने लगी हैं आजकल !

अपनेराम जानते हैं, अपने पाठकों में से बहुतों का ननिहाल दूर के शहरों में होगा। आपका ननिहाल दूर है, तभी तो मुस्करा रहे हैं। तो साहब, लड़कपन से लेकर अब तक आप कितनी बार ननिहाल तशरीफ ले आ चुके हैं ? यही कोई दस-पाँच-सौ बार गये होंगे। किस चीज पर गए थे ? रेलगाड़ी पर नऽ ? वल्लाह मत पूछिये रेलगाड़ी की बात ! पहले की रेलगाड़ियाँ सीधी-सादी होती थीं। उन पर चढ़ जाइए, तो वे सूधी गाय की तरह कोयला-पानी खाती-पीती अपनी राह चली जाती थीं। कभी पास में टिकट न रहा तो टी० टी० साहब कुछ घूस-घास खाकर छोड़ देते थे।

मगर आज की बात न पूछिए। कमबख्त रेलगाड़ियाँ भी भड़कने-लड़ने लगी हैं और कभी-कभी बिदककर पटरी पर से उतर कर भागने लगती हैं। टी० टी० बेचारों की कुछ चलती नहीं। स्पेशल मजिस्ट्रेट साहब कहीं बियाबान में गाड़ी रोक लेंगे और यदि आपके पास टिकट न हुआ तो तुरन्त हथकड़ी, फौरन फैसला, 'एटवन्स' जेल ! जेल, साहब ! आज का जमाना सुराज का है नऽ !

आज इन्सान की जान यात्रा के समय हथेली पर रखी रहती है। रेलगाड़ी में एक मामूली धक्का लगने पर यात्रियों की जान कलेजे में हिलने लगती है।

अपनेराम अखबार के जरा बेहद शौकीन हैं। इसलिए रेलगाड़ी के लड़ने, पटरी से उतर भागने, भड़ककर उलटने का कोई भी समाचार अपन से छूटता नहीं। इधर साल भर में रेलगाड़ी की जितनी दुर्घटनायें हुई हैं, उतनी शायद देश में रेलभवानी के आगमन से अब तक न हुई होंगी। रेलें लड़ती हैं, अखबार समाचार छापते हैं। मिनिस्टरान कान खड़े करते हैं, कुछ दिनों तक होहल्ला होता है, तब तक दूसरी ट्रेन के भिड़न्त हो जाने की खबर आ

पहुँचती है। जनता जान से जाती है, जान से खेलनेवाले मौज करते हैं....इसीका नाम है सुराज ?

साहब ! सावधान, अब कभी रेलगाड़ी पर पाँव मत रखिये, चाहे नैहर में बीबीजान को पहला बच्चा ही क्यों न हो रहा हो। भई, अपनी जान की खैर चाहो, तो मेरी सलाह पर अमल करो। जान की खैर न चाहो तो खैर, अपनेराम का क्या जाता है ?

हवाई हमला !

लड़ाई के जमाने में यह शब्द 'हवाई-हमला' तो आमफहम हो गया था। बच्चे-बूढ़े सभी यह शब्द सुनकर अटेन्शन हो जाते थे। हवाई-हमले का साइरन बजा और लोग-बाग दनादन अपने घोंसलों में घुसकर सियाराम-सटक-सीताराम जपने लगते थे। हवाई-हमला उस जमाने में हवाई-जहाजों द्वारा होता था।

मगर साहब, आजकल तो हवाई-हमला जानवर भी करने लगे हैं। जानवरों के हमले की न पूछिये। जमीनी हमले में तो ये पटु होते हैं। गदहेराम की दुलत्ती, भेड़ाचन्द की भिड़न्त, सांड़-प्रसाद की सींग आदि का सामना तो आप और आपके दादा ने सैकड़ों बार किया होगा। अब जानवरों की जानकारी भी बहुत आगे बढ़ चुकी है। अब ये जमीनी हमला छोड़कर हवाई-हमला बोलने लग गये हैं सो भी रात में इतने चुपके से कि सुबह आप देखेंगे कि बदन का एक-एक रोआँ गायब।

आपको विश्वास ही नहीं आ रहा है। छोड़िये जी, हमारी बातों पर कोई नालायक विश्वास भी तो नहीं करता—अजीब मुसीबत है।

तो सुनिये 'इक छोटी-सी कहानी जिन्दगी की' सो भी केवल एक रात की, जब कि ''मौज घड़ी-दो घड़ी की' मनाने के पश्चात हमलोग यानी अपनेराम और अपनी वे एक ही स्लीपासन पर सूतायमान हुए, सपाट छत के ऊपर ! चाँद की न पूछिये। वह कम्बख्त तो सभी पर हँसता है। आज भी हम दोनों पर हँस

रहा था। मगर हमने चाँद साहब का ख्याल छोड़कर कई मील लम्बी तान दी।

हम दोनों के बाप-दादों में से किसी को घोड़े बेचने की आदत नहीं थी, परन्तु हम दोनों तो घोड़ा, गदहा, सब कुछ बेंचकर सोते हैं। बेचारे खटमल-मच्छर भी भरपेट दावत उड़ा लेते हैं, हमारी कुम्भकरणी निद्रा से बेफिक्र होकर।

तो जनाब, हम दोनों सोये लम्बी तानकर, घोड़ा बेचकर।

नींद खुली पहले अपनेराम की। सुबह की फीकी रोशनी फैल रही थी। हवा तो ऐसी जानमारू बह रही थी कि पता नहीं किस अनजाने हाथ से बदन का रेशा-रेशा गुदगुदाये जा रही थी।

अपनेराम को जोर से अँगड़ाई आई, फिर जरा-सा खिसक कर देवीजी को हाथ में बाँधना चाहा....मगर....मगर....हाय ! मेरी देवीजी कहाँ गईं ? रात में तो वे बगल में ही सोई थीं। परन्तु इस समय तो उनके स्थान पर एक छोकरा मेरे पास सो रहा है। बड़ा हसीन छोकरा है, परन्तु सर पर जरा भी बाल नहीं, भौंहों पर भी बाल नहीं ! यह कौन लड़का है। इसे तो कभी नहीं देखा। लेकिन इसके बदन पर तो देवीजी की ही साड़ी है। या अल्लाह, क्या माजरा है ?....एक ही रात में देवीजी औरत से मर्द कैसे बन गईं।

अपनेराम सोच ही रहे थे कि 'सर-सफाचट्ट, भौंह नदारद' वाला वह छोकरा जगा, एकाएक मुझे घूरने लगा, फिर चिल्ला उठा।

अरे, यह तो देवीजी की ही आवाज है ! तो इनके सर और भौंहों के बाल क्या हुए ? रहम कर खुदा, अपनी जादूगरी बन्द कर।

तब तक देवीजी उठ खड़ी हुईं और लगी दोनों हाथों से मेरी कुटम्मस करने, यह कहकर— "तू कौन है मुआ ! तेरे माँ-बहनें नहीं हैं क्या, जो मेरे पास सोने आया ?"

लीजिये साहब ! आज की दुनिया में अपनी बीवी के पास सोना भी गुनाह हो गया। वाह री देवीजी, वे इस प्रकार अपने हाथों का पिस्टन चला रही थीं कि बदन कुट-पिसकर भर्ता बना जा रहा था।

अपनेराम की सारी हेकड़ी गुम हो गई। चिल्ला उठे—"अब

बस करो रानी !" आवाज सुनकर देवीजी के हाथों में ब्रेक लग गया। वे बोल पड़ीं—"अरे तुम हो !....यह कैसी सूरत बना रक्खी है ?....तुम्हारे सर के बाल क्या हुए ?... तुम्हारी मूछें कहाँ गईं। तुम्हारी भौंहों के बाल किधर चल दिये ?"

"यह क्या कहती हो तुम ?" कहकर अपनेराम ने अपना सर छुआ—साफ ! एकदम साफ ! एक भी बाल नहीं। मूछें क्या हुईं—हाय राम, ये भी गायब ! भौंहे भी मैदान बन गई थीं। यह क्या हुआ ? रात में कौन-सा चोर आया जो हम दोनों की यह गति बना गया ? उसे यदि कम्बल बुनने के लिए बालों की जरूरत थी तो उसने किसी भेड़-बकरी को क्यों नहीं चुना ?

"क्या सोच रहे हो ?... तुम्हारे बाल क्या हुए ?"

"तुम्हारे बाल भी तो लापता हैं...."

"अयँ।" देवीजी ने अपनी खोपड़ी सहलाई—"हाय मैया ! मैं तो लुट गई। मेरी चोटी क्या हुई ?...."

"अरे ! उधर देखो उस पेड़ को...."

"अरी दैया ! वह पेड़ तो अभी कल ही हरा-भरा था—उसकी पत्तियाँ क्या हुईं ?...."

हम दोनों हक्के-बक्के होकर इधर-उधर देख रहे थे, तभी बाहर से कोई चिल्लाया—"अरे चमगादड़जी, रात में सोये थे या जागते—टिड्डियों का हमला हुआ था ?...."

आत्महत्या !

आत्महत्या करना उतना आसान तो नहीं कि सभी लोग शहीद हो सकें। बहुत कम ही लोगों में यह साहस आ पाता है।

अगर वैज्ञानिक लोग आत्महत्या का कोई 'मोस्ट' आसान तरीका खोज निकालें तो हर घर से रोज कम से कम एक जीव तो अवश्य ही शहीद हों। इम्तहान का नतीजा निकलते ही ऐसे शहीदों की संख्या बेहद बढ़ जाती है। उस दिन हाई स्कूल का

नतीजा निकला था। एक मित्र संध्या समय अपनी रोनी-सी सूरत लिए अपनेराम के पास आये। अपनेराम ने उनके चेहरे का लिफाफा देखते ही उनके दिल के खत का मजमून भाँप लिया।

"फेल हो गये दोस्त ?"

"हाँ !...."

"अब क्या करोगे !"

"आत्महत्या !"

बाप रे बाप ! सुनकर बदन के रोंगटे खड़े हो तनतनायमान हो गये। बोले अपनेराम—"क्या सचमुच तुम...."

वे रो पड़े–"दोस्त ! अब मेरे लिये कोई रास्ता नहीं। आत्महत्या की सरल तरकीब बताओ, ताकि कष्ट भी न हो और...."

"और सीधे स्वर्ग चले जाओ....ठीक है....गदहे की टाँग खाते-खाते...."

"यार, मजाक छोड़ो...."

"धतूरा-संखिया-अफीम खाकर...."

"मैं नशा नहीं छूता...."

"ब्लेड से गला तराश लो...."

"उहुँक !...."

"बीबी की साड़ी से गला बाँधलर छत से लटक जाओ...."

"बीबी है ही नहीं दोस्त ! बाप ने शादी नहीं की, इधर-उधर से काम चल जाता है...."

"रेलगाड़ी के नीचे...."

"रेलगाड़ी ?....ठीक है दोस्त ! रेलगाड़ी के नीचे ही आ रहूँगा....चलो, जल्दी करो...."

"मैं कहाँ चलूँ ?"

"चलकर मुझे पकड़े रहना ताकि मैं डर से उठकर भाग न सकूँ....मेरा दिल जरा कमजोर है....तुम तो जानते ही हो।"

मित्र के जीवन में साथ दिया था, तो अन्तिम यात्रा में भी साथ

देना चाहिये।

सुनसान रेलवे लाइन के किनारे आकर हमलोग खड़े हो गये। मित्रजी इधर-उधर करने लगे तो अपनेराम ने उन्हें ढकेलकर लाइन पर सुलाया और स्वयं ४-५ कदम पीछे हटकर खड़े हो गये।

अँधेरी रात में ज्यादा देर तक इन्तजार नहीं करना पड़ा। रेल भवानी दिखाई पड़ीं !

"यार !....' मित्रजी की आवाज काँप रही थी।

"चुपचाप पड़े रहो...अभी जान सड़ से निकल जायगी।"

रेल की पटरियाँ खड़खड़ाने लगी थीं।

"डर लग रहा है यार !....तुम आकर मुझे ऊपर से दबाये रहो। ट्रेन पास आ जाय तो छोड़ देना....तुम्हारी कसम, मैं आज आत्महत्या जरूर करूँगा...."

अपनेराम ने उनके ऊपर आकर उन्हें दबोच दिया। रेलगाड़ी की तेज रोशनी दिखाई पड़ी।

"यह रोशनी कैसी है ?" मित्रजी पड़े-पड़े पूछते भये।

"रेलगाड़ी की है...."

"यार, जरा अपना बोझ हल्का करो...मेरे ऊपर इस तरह सिंहासन जमाकर बैठ गये हो कि रेलगाड़ी के आने के पहले ही मैं टैं बोल जाऊँगा।"

"मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ....अब तुम शौक से मरो...." अपनेराम एक पेड़ के पीछे चले गये।

रेलगाड़ी की घड़घड़ाहट कान फाड़े दे रही थी। एकाएक मित्रजी रेलवे लाइन से उठकर मेरे पास दौड़े आये —"यार कौन-सी गाड़ी है ?....मालगाड़ी के नीचे ही कटना ठीक होगा। सवारी गाड़ी के लोग तो मरने पर मजाक उड़ायेंगे...."

"तुम्हें डर लग रहा है ?"

"नहीं जी, थोड़ा दिल धड़क रहा है—बस !....घर पर कोई खत भी नहीं लिखा कि मैं...."

"मैं सूचना दे दूँगा...."

"यह लो, गाड़ी तो पास कर गई...." मित्रजी बोले।

"मगर तुम फल के फल ही रहे और गाड़ी पास कर गई.... चलो किसी सायकिल के नीचे आत्महत्या करो...."

"क्या जान निकल जायगी ?...."

"अरे, तुम पहले चलो भी तो...."

सुनसान अँधेरी सड़क पर एक सायकिल गुजर रही थी। अपनेराम ने बगैर 'अटेंशन' बोले मित्रजी को उसके नीचे ढकेल दिया और उनकी मौत का इत्मीनान करके घर चले आये।

दूसरे दिन मित्रजी सशरीर मिले। बोलते भये—"यार ! वह साइकिल एक पहलवान लड़की की थी। वह-वह चप्पल रसीद काटे हैं उसने कि पूछो मत। जीते जी ही आत्महत्या हो गई हमारी...."

हलुआ !

"अहा, जीभ पानी-पानी हो गई नऽ ? नाम ही ऐसा है साहब हलुआ का कि सुनिये तो मुँह में पानी भर आये, सामने देख लीजिये तो लालच से जीभ बाहर लटक पड़े और थोड़ा-सा गले के नीचे उतारिये तो कलेजा तर !

अपने नाना बुजुर्ग ने तो अपने जीवन भर में केवल एक ही बार हलुआ चखा था, सो भी तब, जबकि अपनी दयामयी नानी साहबा 'टें' बोल गई थीं और श्राद्ध में जुटे भये महाब्राह्मण ने नाश्ते के लिए हलुआ की माँग की थी। उस समय तो अपनेराम का नन्हा-मुन्ना-सा बचपन था, मगर उस हलुवे का स्वाद अब भी अपनी जबान को बखूबी याद है।

कई बार अपनी 'बेटर-हाफ' साहिबा से अपनेराम ने हलुवे की फर्माइश की और जब-जब हलुआ बनकर सामने आया तो यह मानना पड़ा कि 'माडर्न' गृहिणियों को सभी शास्त्रों के अतिरिक्त पाक-शास्त्र का भी 'प्रेक्टिकल' अध्ययन बहुत आवश्यक है। सच मानिये, अपनी 'वाइफ' साहिबा खाने लायक हलुआ नहीं बनातीं,

पीने लायक 'लपसी' बना देती हैं। यह मजबूरी है।

मगर उस दिन सबेरे-सबेरे सुश्रीजी के हाथों में नाश्ते की तश्तरी और तश्तरी में लबालब भरा हलुआ देखकर अपनेराम बड़े खुश हुये और पानीदार जीभ को मुँह से बाहर निकलते-निकलते जबर्दस्ती रोका। हलुआ की तश्तरी लेकर अपनेराम ने दो-चार कौर खाया! वाह-वा! हलुआ क्या है कि खाते ही खाते शरीर का एक-एक रोआँ गदगदायमान हो उठा।

"आज तो बड़ी खुश नजर आ रही हो, हलुआ क्या जान-मार बना है कि छप्पन छुरी भी मात। सूजी का तो नहीं मालूम होता, कमलगट्टे का है नऽ?...."

"नहीं तो...."

"तब?...."

"फों!...."

"फों क्या?"

"फों!...."

"फों-फों! क्या करती हो? ठीक से बताती क्यों नहीं? आज हलुआ क्या बना लाई हो कि पूरी तौर पर अजगर ही बन गई हो, बात-बात में फों!...."

"अरे जनाब! यह अजगर का ही हलुवा तो है। पड़ोस के मदारी से एक छोटा-सा अजगर माँग लाई थी...."

"राम-राम, शिव-शिव!....अजगर का हलुआ है यह! तुम भी कितनी बेदिमाग हो। भला अजगर का भी कभी हलुआ बनता है?....राम-राम....थू! थू!...."

"थूकते क्यों हो? अभी तो मजे से खा रहे थे...."

"खा रहा था तो हलुआ समझकर कि अजगर जानकर.... बाप रे बाप। वेदव्यास ने पाकशास्त्र में भी ऐसे हलुवे की विधि न लिखी होगी....तुम एक दूसरा ग्रन्थ रच डालो, जिसमें अजगर का हलुआ, मेंढक का अचार, चूहे की चटनी, छछूँदर की तरकारी

आदि भोज्य पदार्थों की सरल विधि हो....”

“तुम तो नाराज हो गये जी, इस जरा-सी बात पर ही....”

“जरा-सी बात ?....बबूल के काँटें जैसी गलती करके गुलाब जैसी मासूम बनती हो ?....मेरा धरम-करम सब नष्ट कर दिया तुमने....”

“हटो जी, मैं तो मजाक कर रही थी। यह तो कमलगट्टे का हलुआ है। अजगर के हलुये की बात तो अभी कल मैंने 'परदेसी' में पढ़ी थी....”

“परदेसी में ?....ओह, हां, याद आया....अगर इसी तरह तुम उपन्यास पढ़ती रही तो तुम्हारा दिमाग खराब हो जायगा.... कमलगट्टे का हैं नऽ! तो लाओ थोड़ा खा ही लूँ....”

होली हो ली !

सबेरे-सबेरे आँखों के फाटक में ऐसा मजबूत अलीगढ़ी ताला जकड़बन्द रहता है कि लाख कोशिशें करो मगर कमबख्त खुलने का नाम ही नहीं लेता। होली के सुबह ऐसी ही हालत हुई अपनेराम की।

नींद तो खुल गई मगर आँखों ने खुलने के नाम पर हड़ताल कर दिया। लाचार काँख-कूँखकर चारपाई पर करवट बदली और फिर से निंदिया रानी के पधारने के लिए 'रिक्वेस्ट' करने लगा।

अपनी मुसिरीजी को ऐसे 'क्रिटिकल मोमेंट' में 'इण्टरफियर' करने की बड़ी 'बैड' आदत है।

न जाने किधर से फागुन की बदली की तरह एकाएक फट पड़ीं और झट बरस पड़ीं—“अभी सोते ही हो जी ?”

“हाँ जी !....” अपनेराम ने आँखें बन्द किये हुए ही जबान खोली—“त्योहार के दिन सबेरे-सबेरे सोना भी हराम हो गया ? इस तरह बेमौके फट पड़ती हो कि ससुरा आसमान भी क्या फटेगा ?”

"देखो जी, आसमान को मेरा बाप मत बनाओ—जगाऊँ न, तो बयासिल घण्टे टाँग पसारे सोते ही रह जाओ! आँखें खोलकर जरा अपना मुँह तो देखो...."

"त्यौहार के दिन "अर्ली मार्निङ्ग' में अपना मुँह देखूँ? दिन भर पेट के चूहों को खाना भी नहीं मिलेगा देवीजी! फिर अपना मुँह तो हर रोज दिन में साढ़े दस बार देखा ही करता हूँ। आज कोई नई बात हो गई क्या?"

"लो शीशा, और देखो...." कहकर सुसिरीजी ने जबरदस्ती मुझे शीशा पकड़ा दिया।

बड़ी मुश्किल से आँखों की खिड़की खुली और हाथ के शीशे पर नजर पड़ी।

वल्लाह! आजकल शीशा बनानेवाले भी बड़ा कमाल दिखाने लगे हैं। एक ओर मुँह देखने का शीशा लगा देते हैं और उसकी पीठ पर कोई अजीबोगरीब तस्वीर चिपका देते हैं, ताकि दर्शक लोग अपना चेहरा भी देखें, और पीठ पर की नाजनी की तस्वीर से दिल भी बहलायें।

मगर यह कारीगर तो बड़ा 'स्ट्रेंज' आदमी है, शीशे की पीठ पर हुस्न चिपकाने के बजाय कार्टून चिपका दिया है।

"सुनती हो?....यह किसकी तस्वीर है?...."

"कौन-सी?....शीशे में जो दिखाई पड़ रही है?...."सुसिरी जी ने पूछा।

"हाँ...."

"तुम्हारा ही चेहरा तो है...."

"मेरा?....कभी नहीं, हर्गिज नहीं, नेवर!....अपने नाना बुजुर्ग का भी चेहरा इतना कार्टूनिश नहीं था.. होली के दिन मजाक करती हो?... भला यह भी कोई शकल है? मुँह पर कालिख, आधी मूँछें सफा, सर के आधे बाल नदारत, दाहिनी भौं सेफ्टीरेजर से मुड़ी हुई...."

"जनाब ! यह आपकी ही शकल है....गौर से देखिये...."

अपनेराम को विश्वास नहीं हुआ।

शीशा उलटकर देखा तो पीछे सुरैया रानी की तस्वीर हँस रही थी। तब तो शीशे में अपनेराम की ही छबीली सूरत नजर आई थी। मगर यारों, ऐसा भी कोई जन्तु है दुनिया में, शीशे में अपनी सूरत देखकर पहचान न सके।

मगर भाईजान, शीशे में आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी अपने राम अपनी सूरत नहीं पहचान रहे थे।

"यह जादू है क्या ?..."

"जादू नहीं, कोई चुपके-चुपके आकर तुम्हारी यह गत बना गया है ...."

अब लीजिये ! कम्बख्त बगल-वासियों ने नाक में बाँस घुसेड़ दिया है कि साँस लेना भी मुश्किल हो उठा है। इनके डर से कोई त्योहार के दिन आराम से सोये भी नहीं। एक तो चोरों की तरह दबे पाँव बाप के घर में घुस आते हैं, दूसरे बिना नोटिस दिये शरीर का आधा बाल मूँड़, में कालिख लगा 'एबाउटर्न' हो जाते हैं। अपनी नींद भी ऐसे बेमौकों पर हरामजादी धोखा दे जाती है और अपनेराम को भगवान्‌ कुम्भकरण का पोता समझकर बेभाव धर दबोचती है।

"सोचते क्या हो ? उठकर मुँह साफ कर डालो...."

"मुँह क्या साफ करूँ ?....दाहिनी ओर के बाल, भौं, मूँछ, सब कुछ तो साफ है....कम्बख्त पड़ोसी शायद बाईं आँख का काना था तभी तो सिर्फ दाहिनी ओर हमला बोल गया...."

"आधे बाल जो बच रहे हैं उन्हें भी साफ कर डालो...."

"यही ठीक होगा...." कहते-कहते अपनेराम की पैनी दृष्टि सुसिरी जी के सर्वाङ्ग पर सरसरी तौर पर दौड़ी तो देखकर बड़ी ही हँसी आई—"यह क्या जी ? आज चारों ओर जादू ही जादू

नजर आ रहा है। तुम्हारे बदन पर इस समय सुशुद्ध बल्कल वस्त्र क्यों है? घास का लहगा और पत्तों की चोली....राम....राम....”

“क्या करूँ! सरकार को बधाई दो। धक्के खाने पर भी कपड़ा नहीं मिलता। साड़ी के छेदों से धूप लगते-लगते बदन पर काले धब्बे पड़ गये और तुम भी कहने लगे कि मैं चितकबरी होती जा रही हूँ....

“भई सरकार को गाली मत दो। रामराज है न, गाली लेना-देना गुनाह है। कपड़ा नहीं मिलता मगर ईश्वर ने केले के पत्ते जैसी लम्बी-चौड़ी दो हथेलियाँ तो दी ही हैं। उन्हीं से बदन ढँक कर निकला करो....”

“तुम्हें भी फागुन की बयार लग गई है....अच्छा, अब उठो...”

बल्कल वस्त्रधारिणी देवीजी ने अपनेराम का हाथ पकड़कर उठाया। नल के नीचे ले जाकर बड़े प्रेम से मुँह की कालिख धोई, फिर अपना बाल-सफा लगाकर बायी ओर के भी बाल साफ कर दिये। सर मूँछें और भौहें सफाचट। अपनी शकल क्या बन गई, होली में ऐसा अलबेला कार्टून किसी पत्रिका में भी न छपा होगा।

इस साल बनारस में अपनी पहली होली थी भाईजान, सो बनारसियों ने हम जैसे मासूम पड़ोसी को भोथरे छूरे से उलटा मूँड दिया। अपना एक-एक रोआं बिना रस की होली पर कुर्बान हो गया। दोपहर को खाने बैठे तो एक से एक लजीज चीजों पर हाथ फेरा। सुसिरी जी की पाकशास्त्रज्ञता पर आश्चर्य करना पड़ा।

“बड़ा अच्छा खाना बनाया है तुमने तो!”

“सभी चीजें फलाहारी हैं, आलू की बनी हुई....” वे बोलीं —“गल्ला तो गूलर का फूल हो गया है। सरकार भूखों की मर्दुमशुमारी करके बैठ गई मगर यह न हुआ कि त्योहार पर एकाध छटाँक गेहूँ-चावल का इन्तजाम कर देती....ऐसी सरकारी करनी हो तो मैं भी करने लगूँ....”

"तुम तो भई, सरकार हो ही....अपनी बहन सरकार पर बात-बात में खफा मत हुआ करो....जानती हो, मर्दुमशुमारी होने पर सरकार को मालूम हुआ कि देश में बेकारों की आबादी बढ़ती जा रही है, सो वह लोगों को खाना और कपड़े के बिना तड़पा-तड़पाकर मारना चाहती है, ताकि फिर वे कम्बख्त इस देश में दुबारा जन्मने की कोशिश न करें।"

"अगर इसी आजादी के लिए माँ-बहनों ने अपने बेटे-भाइयों की कुर्बानी दी, अगर इसी आजादी के लिए अपना घर फूँककर जनता ने जेल में सड़ते हुए नेताओं के ठिठुरते शरीर को गर्मी पहुँचाई तो मैं कहूँगी कि वे सब मूर्ख थे। नेता तो शासक बन गये, मगर जनता को क्या मिला ? अन्न के स्थान पर कंकड़-पत्थर, कपड़ों के स्थान पर लाठी-डण्डा....तुफ् है ऐसी आजादी पर...."

"विद्रोह !....सरासर बगावत !....ज्यादा बमको मत। यह हवा भी आजकल सरकार की जासूसी करने लगी है...."

बड़ी मुश्किल से अपनी सुसिरी जी का ताव ठण्डा हुआ।

तीसरे पहर सज-धज कर अपनी कार्टूनी शकल लिए अपनेरा चहलकदमी करने निकले।

तो कुछ शैतान मानव-बन्दरों ने (यानी बालकों ने साहब चारों ओर से घेर लिया।

एक बोला—"टाल हो...."

"....क बाल हो...." दूसरे ने सप्तम स्वर में बाँग दी

और तीसरे ने लपक कर मेरी छाती पर एक ट्रेडमार्क दिया, जिसमें लिखा था—"टाल हो....क बाल हो...."

—छः बसः—



देश के यशस्वी साहित्यकार भी यह स्वीकार करते हैं कि हिन्दी में आज स्व० कुशवाहा कान्त के पाठकों की संख्या सबसे अधिक है। उन्होंने हिन्दी को नई शैली, नया मोड़ तो दिया ही, पाठकों को सस्ते दामों में उपन्यास उपलब्ध होते रहें, इस दिशा में पहला कदम भी उन्होंने ही उठाया था।

कितने ही अहिन्दी भाषियों ने केवल कुशवाहा कान्त की पुस्तकें पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। उनकी प्रत्येक पुस्तकों की लाखों प्रतियाँ छप-बिक चुकीं।

लेकिन...

फिर भी उनकी माँग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है!



भारत पॉकेट बुक्स